बापू के चरणों में

विनोबा

बापू के चरणों में

विनोबा

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-२२१००१
E-mail:sarvodayavns@yahoo.co.in

प्रकाशकीय

इस वर्ष की गांधी-जयन्ती से 'गांधी-जन्म-शताब्दी' के वर्ष का प्रारंभ हो रहा है। ऐसे मंगल अवसर पर गांधीजी के विषय में विनोबाजी के उद्गारों का यह संकलन 'बापू के चरणों में' हम प्रकाशित कर सके हैं; इसकी हमें हार्दिक प्रसन्नता है।

विनोबाजी **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** का संकल्प लेकर घर छोड़, हिमालय की तरफ बढ़े और बीच में भारतीय अध्यात्म-विद्या का संस्कृत-भण्डार आत्मसात् करने के लिए काशी में ठहरे। यहीं पर हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-समारोह में दिये गये गांधीजी के इतिहास-प्रसिद्ध ओजस्वी भाषण ने विनोबाजी को हिमालय के बदले, गांधीजी के आश्रम में खींच लिया और परमात्म-दर्शन हिमालय की गुफा में नहीं, बल्कि जनता-जनार्दन की सेवा में ही हो सकता है; यह मौलिक दीक्षा उन्होंने बापू से प्राप्त की। बापू के सम्पर्क में आने का अपना अनुभव विनोबाजी ने अपने जिस प्रवचन में बताया, वह इस संकलन के ११वें प्रकरण में पाठकों को पढ़ने को मिलेगा।

बापू और विनोबाजी का सम्बन्ध एक प्रकार से अनिर्वचनीय ही कहा जायेगा। बापू का नाम लेने के बदले, बापू का काम करते रहने को, विनोबाजी सही माने में 'बापू-स्मरण' मानते हैं। जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में हृदय में श्रद्धा की पराकाष्ठा का भाव होता है; उस व्यक्ति के सम्बन्ध में शब्दों द्वारा भाव प्रकट नहीं किया जा सकता। विनोबाजी की स्थिति बापू के सम्बन्ध में क्या थी, इसका जो भी अल्प-शब्द-प्रकटन उनके द्वारा हुआ है, वह हमारे लिए एक बहुत-बड़ी थाती है।

'बापू का सन्देश कया है ?' इस मौलिक प्रश्न का विवेचन इस संकलन के १५वें प्रकरण में सार-रूप में आ गया है।

गांधी-जन्म-शताब्दी के शुभ-दिन पर हम यह प्रकाशन पाठकों की सेवा में अर्पण कर रहे हैं। आशा है, पाठकगण इससे समुचित लाभ उठायेंगे।

दूसरा संस्करण

अत्यन्त अल्पावधि में इस पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। सुज्ञ पाठकों ने इसे पसन्द किया, यह प्रसन्नता की बात है। हम चाहते हैं कि ऐसी सुरुचिपूर्ण, जीवन-प्रेरक और चिन्तन प्रधान पुस्तक घर-घर में पहुँचे और पारिवारिक ढंग से पढ़ी जाये, तो राष्ट्रपिता की भावना को जीवन में उतार सकने की शक्ति उपलब्ध हो सकती है। इसे ध्यान में रख यह संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है, जिसे पाठकगण अन्य संस्करणों की भाँति ही पसंद कर, लाभ उठायेंगे।

- प्रकाशक

अनुक्रम

१. गांधी : अति-प्रतिभाशाली जीवन
२. गांधी-स्मृति से गुण-ग्रहण
३. उत्पादक श्रम के पुरस्कर्ता
४. राष्ट्र-पुरुष और सन्त-पुरुष
५. गांधी बाबा का मेला
६. गांधीजी की सत्यनिष्ठा
७. युग-प्रवर्तक विचार
८. गांधी : बहुमुखी-प्रेषित व्यक्तित्व
९. गांधी : एक नव-विचार
१०. बापू का वात्सल्य
११. स्वतन्त्र-विचारों की आवश्यकता
१२. गांधीजी की अपूर्व शिक्षाएँ
१३. मैंने बापू से जो सीखा… !
१४. मैंने जो ‘गांधी-विचार’ समझा !
१५. गांधीजी का सन्देश : ‘साधन-साध्य-अद्वैत!’
१६. दरिद्रनारायण और शौर्यशाली अहिंसा
१७. ‘हे राम !’

: १ :

गांधी : अति-प्रतिभाशाली जीवन

जिस किसी ने माना कि 'गांधीवाद' एक 'वाद' है, वह समझा ही नहीं। गांधी तो ऐसे पुरुष हो गये जो बहुत व्यापक विचार करते थे। लगभग वे स्मृतिकारों की कोटि में आते हैं। किसी ने उनकी तुलना ईसा के साथ की, तो किसी ने तिलक के साथ। मेरी राय में उनकी तुलना स्मृतिकारों—मनु और याज्ञवल्क्य के साथ हो सकती है, जिनका व्यापक विचार जीवन के सभी पहलुओं को स्पर्श करता है। उन्हें आध्यात्मिक प्रतिभा अन्तर से ही मिली। इसलिए उनकी तुलना और किसी के साथ नहीं हो सकती।

गांधीजी बड़े व्यापक समाजशास्त्री थे। फिर भी मनु में और उनमें एक अन्तर था। मनु चिन्तन-प्रधान थे तो गांधीजी सेवा-प्रधान। जहाँ तक जीवन का प्रश्न है, वे व्यापकता के साथ विचार करते। उस सन्दर्भ में संस्कृति का भी प्रश्न उठता है। उस दृष्टि से सोचें तो टॉल्स्टाय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर काफी व्यापक विचारक थे। लेकिन गांधीजी कर्म-प्रधान (ऐक्टिविस्ट) थे तो विवेकानन्द थे रहस्यवादी (मिस्टिक) । इस प्रकाश में गांधीजी का वर्णन करना हो तो वे प्रधानत: कर्मवादी थे और रहस्यवादी गौण।

गांधीजी ने लोकमानस पर जो प्रभाव डाला, वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का है। उनकी प्रतिभा (इन्स्पिरेशन) में संस्कृति का काफी स्थान है। मेरा मानना है कि यदि सांस्कृतिक दृष्टिकोण (कल्चरल आस्पेक्ट) से देखना हो तो किसके जीवन का प्रभाव स्वयं उससे भी अधिक रहता है; यह देखना चाहिए। इसी दृष्टि से मैंने एक बार कहा था कि 'गांधीजी की खूबी यह थी कि वे अपने ग्रन्थों से बड़े थे और कवि शेक्सपियर तथा मिल्टन थे, अपने ग्रन्थों से छोटे।' निश्चय ही शेक्सपियर और मिल्टन ने अत्यन्त प्रतिभाशाली ग्रन्थ लिखे। लेकिन गांधीजी का जीवन बहुत

ऊँचा, अच्छा और उन्नत था, जब कि विचार प्रकट करने (एक्सप्रेशन) में वे कमजोर थे। ग्रन्थ से भी उनके जीवन में अधिक प्रतिभा थी।

माचला, इन्दौर

३०.८.१९६०

: २ :

गांधी-स्मृति से गुण-ग्रहण

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति । ।

गांधीजी की महती विशेषता

आज से चार साल पहले इसी दिन गांधीजी अपना मर्त्य-शरीर छोड़, हम सबकी विशेष सेवा के लिए अव्यक्त रूप में लीन हो गये। उनकी यही इच्छा रही कि निरंतर जन-समाज की सेवा करते रहें। इसीलिए मैंने कहा कि वे हमारी विशेष सेवा के लिए अव्यक्त रूप से प्रविष्ट हुए। वे रोज प्रार्थना में एक श्लोक गाया करते, जिसमें प्रभु से यही माँगा गया है कि 'मैं न इस दुनिया का राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग और न मोक्ष, बल्कि मैं तो यही चाहता हूँ कि जो दुःखतप्त जीव हैं, वे दुखों से मुक्त हो जायें।' वे सभी जीवों के दुखों की मुक्ति की कामना रखते और उसी काभना से निरन्तर सेवा करते। हम सबने वह अद्भुत चरित्र अपनी आँखों देखा।

इससे पहले भी हिन्दुस्तान में परमेश्वर की कृपा से अनेक महान् पुरुष हो गये हैं। कितने नाम गिनाये जायें ? लेकिन बुद्ध भगवान् का स्मरण हो ही जाता है। वे भी अपने जीवन-काल में निरन्तर यही सोचते रहे कि किस तरह जीवों की दुःख-मुक्ति हो ? उन्होंने इसकी खोज की और दया-धर्म का रास्ता भी बताया, जिससे हर मनुष्य सब प्राणियों के साथ निर्वैर-बुद्धि रखकर जीवन्मुक्त हो जाय। हमारे सन्तों ने भी हमें यही रास्ता बताया। तुलसीदासजी ने कहा है :

दया धर्म का मूल है, पाप-मूल अभिमान ।

सब धर्मों का सार भी यही है कि हमें दया-बुद्धि से बरतना चाहिए, लेकिन हम किसी पराये पर दया कर रहे हैं, इस तरह का अभिमान न होना चाहिए। यदि दया के साथ ऐसा अभिमान

आया, तो वह पाप-मूल हो जाता है। निरभिमान बुद्धि से जैसे हम स्वयं अपने लिए दया करते रहते हैं, वैसे ही दूसरों के लिए भी किया करें। हजार अपराध होने पर भी हमने अपने लिए तो क्षमा ही बख्शी। यही माना कि आज तक हमसे अनेक अपराध हुए, पर अब आगे नहीं होंगे। इस तरह कितनी ही बार हमने अपने को क्षमा की, अपने पर दया की है। इसी तरह दूसरे भाइयों को भी क्षमा करें, उन पर दया करें। आखिर वे भी हमारे ही जुज हैं, हमारे ही अंग हैं। हम दोनों एक हैं, एक ही आत्मा की चिनगारियाँ हैं, यह हमें सब सन्तों ने सिखाया।

लेकिन गांधीजी के जीवन में हमने यह खूबी देखी कि उन्होंने जो तालीम दी, वह है तो वही जो बुद्ध भगवान् से लेकर अनेक सन्तों ने दी थी । यही नहीं, बुद्ध भगवान् के पहले वैदिक-काल से भगवान् श्रीकृष्ण तक सारे महर्षियों और मनीषियों ने भी दी। फिर भी उसमें एक विशेषता है। वैसे कोई नयी बात वे नहीं लाये और न उनका यह दावा ही था कि ‘कोई नयी चीज हम आपके सामने रख रहे हैं।’ बल्कि वे तो यही कहते कि ‘हमारे पूर्वजों का जो अच्छा अनुभव है, उनकी जो नसीहत है, उसी पर मैं चल रहा हूँ। यही उनका नम्र दावा रहा, फिर भी उनके उपदेश में एक नवीनता रही। उन्होंने हमें सिखाया कि दया, क्षमा, शान्ति, सत्य-निष्ठा, प्रेम, निर्वैर-बुद्धि, आत्मौपम्य आदि सद्गुणों का न केवल व्यक्तिगत जीवन और दूसरे व्यक्तियों के मुकाबले में ही उपयोग हो बल्कि सारे सामाजिक जीवन और सामाजिक समस्याओं—यहाँ तक कि राष्ट्रीय समस्याओं के हल में भी उनका उपयोग करना चाहिए और वह हो सकता है। उन्होंने सारे हिन्दुस्तान के लोगों के सामने अहिंसा, सत्य और कष्ट-सहन करके दूसरों का हृदय जीतने का एक रास्ता रखा, जो देश की बड़ी भारी समस्या हल करने के ख्याल से खोजा गया था। हमने देखा कि उनकी नसीहत पर देश ने अत्यन्त लूला-सा, टूटा-फूटा-सा अमल किया। फिर भी उसका कुछ परिणाम आया। सारी दुनिया की कुछ ऐसी परिस्थिति बन गयी कि जिस मसले के हल के लिए सारा राष्ट्र पचास-साठ वर्षों से लड़ता-जूझता रहा, आखिर वह हल होकर रहा। यह चमत्कार हम लोगों ने अपनी आँखों देखा। सारांश, गांधीजी की यही विशेषता मानी जायेगी कि

सामाजिक और राजकीय आदि समस्याओं के हल के लिए उन्होंने आत्मिक शक्ति का उपयोग बताया।

सार्वभौम आत्मिक शक्ति बनाम शस्त्र-शक्ति

आत्मिक-शक्ति एक देह में ही सीमित नहीं हो सकती। इसलिए यह मानना ही गलत है कि वह केवल निजी व्यवहार या व्यक्तिगत व्यवहार में ही सफल होती है। वास्तव में आत्मा व्यापक होने के कारण जैसे आत्मिक शक्ति छोटे-छोटे क्षेत्र में काम आती है, वैसे ही अत्यन्त व्यापक क्षेत्र में भी आ सकती है। मर्यादा तो शस्त्र-शक्ति के लिए है। कुछ शस्त्र ऐसे होते है, जो नजदीक ही काम कर सकते हैं। कुछ शस्त्र ऐसे भी होते हैं, जो दूरी में भी काम आते हैं। तलवार नजदीक ही काम देती है। पाँच सौ फुट पर कोई मनुष्य खड़ा हो, तो उसके सामने तलवार बेकार है। लेकिन आत्मिक शक्ति की स्थिति ऐसी नहीं, क्योंकि आत्मा अत्यन्त व्यापक है। जिस तरह वह हमारे हृदय में काम करता है, उसी तरह सारी दुनिया के सब हृदयों में भी। इसीलिए आत्मिक शक्ति का कोई नाप नहीं, कोई हद नहीं, कोई पैमाना नहीं। फिर भी ऐतिहासिक काल में इस आत्मिक शक्ति का उपयोग अधिकतर व्यक्तिगत क्षेत्र में ही हुआ है। हमने सन्तों के ऐसे चरित्र सुने हैं, जहाँ उन्होंने आत्मिक शक्ति यानी प्रेम की ताकत से दुर्जनों को सज्जन बनाया। हमला करने के लिए आये दुश्मन को दोस्त बनाया। ऐसे किस्से हर देश में हैं। इस तरह व्यक्तिगत जीवन में आत्मिक शक्ति सफल होती है, यह तो समाज ने काफी देखा। लेकिन सामाजिक क्षेत्र में व्यापक पैमाने पर भी उस शक्ति का उपयोग किया जा सकता है, कुछ नया शोध है। यह शोध इस जमाने में हो सका, क्योंकि वह इस जमाने के अनुकूल था। सच पूछें तो वह इस जमाने की ही मांग थी।

निःशस्त्र बना डालने का राज

आप सभी जानते हैं कि किस तरह भारतवर्ष पर अंग्रेजों की सत्ता जम गयी थी। जब पूरी सत्ता जम गयी, तो उन्होंने एक चमत्कार किया। सारे लोगों के हाथ से शस्त्र निकाल लिये और

सारी-की-सारी प्रजा को निःशस्त्र बना दिया। पहले के किसी भी बादशाह ने ऐसा नहीं किया और न वे कर ही सकते थे, क्योंकि उन दिनों विज्ञान के अभाव से सरकार की इतनी व्यापक सत्ता नहीं बनी थी। सरकारी आज्ञाओं पर आज की तरह तत्काल अमल नहीं हो पाता था। दिल्ली में औरंगजेब का कोई हुक्मनामा निकलता तो देशभर में उसका अमल होते-होते वर्षों बीत जाते। लेकिन अंग्रेजों के जमाने में यह हालत थी कि इधर लन्दन से कोई हुक्म जारी हुआ कि चन्द घण्टों में हिन्दुस्तान भर उसका अमल हो जाता था। आज वह हालत और भी तीव्र हो गयी है। दुनिया के किसी कोने से एक हुक्म निकलता है, तो उसका अमल जहाँ-जहाँ उसकी सत्ता है, तत्काल चन्द घण्टों के अन्दर हो जाता है। इतनी व्यापक सत्ता पहले नहीं थी, इसलिए उसे सारे देश को निःशस्त्र बनाना असम्भव था।

गांधीजी के प्रयोग का मर्म

लेकिन विज्ञान के आने के बाद यह सत्ता मनुष्य के हाथ में आयी और उसका उपयोग कर अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को निःशस्त्र बना दिया। अब, जब कि इतनी बड़ी भारी जमात, सारा का सारा देश, बीस-तीस करोड़ लोग जहाँ हैं, जिसका इतिहास भी हजारों वर्षों का पुराना है, जिसकी अपनी एक परम्परा चली आ रही है और जो कोई जंगली नहीं, उत्तम संस्कारयुक्त देश है—उस देश के सब लोगों को नि:शस्त्र किया जाये तो उसके सामने क्या रास्ता रह जाता है, सिवा इसके कि वह कोई ऐसा शस्त्र ढूँढ़ निकाले, जिससे निःशस्त्र होते हुए भी गुलामी का मुकाबला कर जालिम के जुल्मों से मुक्ति पा सके। यह तो असम्भव था कि हिन्दुस्तान जैसा देश सदा के लिए गुलाम बना रहे। किसी-न-किसी को यह सूझना ही था कि आत्मिक शक्ति का व्यापक उपयोग किया जाये और जालिम के जुल्मों से मुक्ति पायी जाये।

भगवान् की प्रेरणा से ऐसा व्यक्ति मिल गया, जिसने उस शक्ति का व्यापक उपयोग किया और 'गांधी' के नाम से उसका दर्शन हुआ। यह एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। यदि गांधीजी न आते तो भी किसी-न-किसी के जरिये यह शक्ति प्रकट होनी थी। परमेश्वर की प्रेरणा से उसके

एक भक्त को यह सूझ गया। व्यापक क्षेत्र में अहिंसा का उपयोग करने की कल्पना पुराने जमाने के लोगों को उतनी नहीं हो पायी, जितनी आज के लोगों को; क्योंकि विज्ञान के अभाव में तब जीवन इतना निकट नहीं आया था, जितना आज आ गया है। सरकार भी तब उतनी विकसित नहीं थी, जितनी आज है और न उसमें उतनी शक्ति ही थी, जितनी आज है। इसलिए पुराने जमाने में आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत और कुछ कौटुम्बिक क्षेत्र तक ही सीमित रहा। विज्ञान के प्रयोग भी ऐसे ही होते हैं। किसी प्रयोगशाला में एक प्रयोग किया जाता है और जब वह सफल होता है, तो एकआध छोटे-से क्षेत्र में उसका प्रयोग किया जाता है। आत्मशक्ति का भी ऐसा ही हुआ। पहले उसका प्रयोग व्यक्तिगत जीवन में हुआ। वहाँ सफल होने पर सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में गांधीजी ने उसका प्रयोग किया।

देश की प्राचीन समाजवादी परम्परा

जो भी हो, यह निश्चित है कि आध्यात्मिक शक्ति का व्यापक उपयोग हो सकता है, इसका प्रत्यक्ष भान हमें गांधीजी ने कराया। सिद्धान्ततः यह बात तो मानी हुई थी कि जो शक्ति व्यक्तिगत और कौटुम्बिक क्षेत्र में काम देती है, वह सामाजिक क्षेत्र में भी काम दे सकती है। लेकिन इतिहास में उसका प्रत्यक्ष अमल बड़े पैमाने पर कहीं नहीं हुआ था। उसे अमल कर दिखाने का अवसर भगवान् ने हिन्दुस्तान को दिया और वह गांधीजी के द्वारा हुआ।

मैं यह भी कहता हूँ कि यह काम करने के लिए यह देश और भी कई कारणों से योग्य था। इस देश के संस्कार ही ऐसे हैं, जिनके कारण यहाँ वालों को आध्यात्मिक शक्ति का भान जल्दी होता है। गंगा के प्रवाह की तरह यहाँ आध्यात्मिक भावना का भी एक अखण्ड प्रवाह-सा बहता चला जा रहा है। परिणामस्वरूप यहाँ वालों के जीवन में एक प्रकार की वैराग्यशीलता प्रविष्ट है। यहाँ की परम्परा ही यह थी कि चन्द दिनों के गृहस्थाश्रम के बाद तत्काल वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए; संयम से रहना चाहिए। राजाओं में रिवाज था कि वृद्ध होने पर राज्य त्याग करके अरण्यों में जाना चाहिए। अहिंसा का इतना विचार यहाँ फैला कि कई जातियाँ मांसाहार से सर्वथा

मुक्त हो गयीं। दूसरी जातियाँ जो मांसाहार कर भी लेती हैं, उसे छोड़ना बेहतर मानती हैं और हृदय से मांसाहार का त्याग कर चुकी हैं। यह सारा दुनिया के दूसरे किसी देश में नहीं, इसी देश में हो सका।

यद्यपि आज हिन्दुस्तान की ऐसी हालत है कि हम गाय के लिए कोई खास दया-भाव नहीं रखते। गाय का दूध भी बिल्कुल कमजोर हो गया है; उसका पालन-पोषण नहीं करते। उसके शास्त्र का विकास हमने नहीं किया, उसकी उपेक्षा ही की। यह सब सही है, तथापि यह भी सही है कि हिन्दुस्तान में गाय को मानव-कुटुम्ब में दाखिल कर लेने और अन्त तक एक कुटुम्बी की तरह उसे निबाहने की कल्पना इसी देश को सूझी, यह भी अहिंसा का एक बड़ा भारी प्रयोग है।

समाजवादियों के साथ जब कभी चर्चा होती है, तो मैं कहा करता हूँ कि हिन्दुस्तान का समाजवाद बहुत गहरा है। हिन्दुस्तान के समाज में मनुष्यों के साथ हमने गाय को भी दाखिल कर लिया है। इसलिए गाय का शोषण नहीं होना चाहिए और उसे भी रक्षण देना चाहिए। यह हमारे समाजवाद की, यहाँ के समाजवाद की मांग है। जो समाजवाद यूरोप में निर्मित हुआ, वह तो बच्चा है। जो समाजवाद हमारी सभ्यता में माना हुआ है, वह उससे कहीं अधिक प्रौढ़ है। वह केवल मानव तक सीमित नहीं, मानव के साथ जिन प्राणियों का नाता जुड़ गया है, उन्हें भी अपने जीवन का, अपने कुटुम्ब का हिस्सा समझना और उनके भी हकों के लिए उतनी ही चिन्ता रखना, जितनी कि अपने हकों के लिए रखते हैं; यह इस देश का समाजवाद है।

युग की पुकार में महामानव का सृजन

ये सारे भाव इस भूमि में विकसित हुए, फले और फूले। इस तरह यहाँ की आध्यात्मिक मनोभूमि ऐसी तैयार थी कि इसमें गांधीजी का विचार-बीज आसानी से बोया जा सकता था। इस देश के वातावरण में जो आध्यात्मिक भावना है; प्राणिमात्र के लिए जो दया-भाव माना गया है; सर्वभूतों में आत्मा का निवास मान्य किया गया है; ये ही मुख्य कारण हैं, जिनकी बदौलत इस

देश में गांधीजी का प्रयोग सफल हो सका। इसका गौरव जितना गांधीजी को है, उससे बहुत अधिक स्वयं इस देश को है। इसलिए मैंने कहा कि गांधीजी तो एक निमित्त-मात्र थे। वे न होते तो और कोई पैदा होता। इस तरह इस देश की आध्यात्मिक-वृत्ति प्रकट हुई और प्रकट होने के लिए परिस्थिति के कारण मौका मिला।

गांधीजी हमेशा कहते थे कि हिन्दुस्तान के जरिये अहिंसा की शिक्षा दुनिया को दे सकते हैं। उन्हें अमेरिका में बुलाया जाता, तो भी नहीं जाते थे। कहते : “मेरा प्रयोग जब मेरा देश मान्य कर लेगा; यहाँ उसका परिणाम दीख पड़ेगा और अहिंसा यहाँ के जीवन में ओतप्रोत हो जायेगी, तब बाहर के देशों के लिए कुछ बोलने की योग्यता मुझमें आयेगी। तब तक बाहर के देशों के लिए सुनाने की योग्यता मुझमें नहीं है।” ऐसी नम्र भाषा वे बोलते। उनका विचार यही था और वे हिन्दुस्तान से अधिक-से-अधिक आशा रखते थे।

गांधीजी की संजीवनी-शक्तिः

गांधीजी की हिन्दुस्तान पर कितनी श्रद्धा थी ! कितना प्रेम उन्होंने इस देश पर किया ! जब कोई कहता कि ‘आप अपना काम बहुत कर चुके, अब आपको तो हिमालय में जाकर ध्यान-चिन्तन करना चाहिए’, तो वे कहते : “अगर मेरे देशवासी हिमालय में रहने के लिए जायें तो उनके पीछे उनकी सेवा करने के लिए मैं भी वहाँ चला जाऊँगा।” उनका हिमालय, उनका ध्यान हम बच्चों के चिन्तन में ही था, तो हिमालय में जाने में क्या बाकी रहा ? वे जहाँ भी रहते, हिमालय में ही रहते। वे गीता-माता के पुत्र थे और निरन्तर अनासक्त रहने का यत्न किया करते। हमारे देश पर उनकी बहुत श्रद्धा थी। वे कहते कि हिमालय-पर्वत पत्थरों से नहीं, हमारे ऋषि-मुनियों की तपस्या से बना है। जिस किसी जगह वे बैठते, अनुभव करते कि मानों शिवालय में बैठे हैं; भगवान् के सामने बैठे हैं।

गांधीजी ने हमें अपनी शक्ति का भान कराया। कितना डरपोक, कितने भेदों से भरा, कितना पिछड़ा था हमारा देश ! लेकिन उन्होंने इसे हिम्मत दी। यहाँ तक कि औरतें, जो कभी घर से बाहर नहीं आयीं; लड़ाई के मैदान में उतरीं और उन्होंने सशस्त्र सैनिकों का मुकाबला किया। इस तरह उन्होंने एक भयभीत देश को निर्भयता का दर्शन कराया। वे कहते कि “जो मनुष्य हाथ में शस्त्र लेकर सामनेवाले का मुकाबला करने को तैयार होता है, वह उतना बहादुर नहीं, जितना बहादुर वह शख्स है, जो शस्त्र की श्रद्धा छोड़, मुकाबला करता है। जिसने हाथ में शस्त्र लिया, उसे अपने बचाव की कुछ गुंजाइश तो मन में निश्चय ही रहती है। कुछ तो आशा उसके पास रहती ही है। शस्त्र लेकर जो लड़ाई में कूद पड़ता है, वह मरने के लिए तो तैयार है, पर मारने की भी कोशिश करेगा। मरने को तैयार है, इसलिए वह शूर है लेकिन जितने अंश में दूसरे को मारने और अपने बचने की आशा उसमें पड़ी है, उतने अंश में डरपोक ही है। पूर्ण और सच्चा निर्भय तो वह है, जो केवल मरना ही जानता है।” यह जो सारी कीमिया उन्होंने की, वह इस देश की गुप्त शक्ति के आधार पर ही, जिसे वे प्रत्यक्ष देखते थे। उनका विश्वास था कि हिन्दुस्तान के लोग अहिंसा की शक्ति प्रकट करेंगे। उनका जो जीवन हमारे सामने प्रकट हुआ, उससे यह ध्यान में आता और विश्वास भी बढ़ता है कि हिन्दुस्तान में यह शक्ति प्रकट हो सकती है।

शेरों की शक्ति का भान

आज आप लोगों से अधिक नहीं कह सकूँगा। शब्द कुछ काम नहीं दे रहे हैं। इतना ही कहता हूँ कि हमें ऐसे महान् चरित्र का स्मरण करके अपने जीवन में वे चीजें लानी हैं। सन्तों के चरित्रों का पठन और स्मरण इसलिए किया जाता है कि उनमें हमें अपने आत्मा का रूप देखने को मिलता है।

वेदान्त में एक कहानी आती है। एक शेर था। वह बचपन में पकड़ा गया और उसका पालन-पोषण एक बिल्ली की तरह किया गया। उसे दूध पिलाया जाता। वह बकिरयों के साथ घूमता। नित्य की तरह एक दिन वह जंगल में बकरियों के साथ गया, तो सामने से एक शेर आया

और उसने एक बकरी पर हमला किया। वह बकरी को उठा ले गया। वह दृश्य जब उस शेर ने देखा, जो बचपन से बकरियों के बीच पला था; तो उसे आत्म-दर्शन हुआ। उसे भान हो गया कि मैं शेर हूँ, बकरियों के साथ रहनेवाला बकरा नहीं। तब वह तत्काल एक बकरी पर टूट पड़ा और उसका प्रयोग सफल रहा। फिर वह सदा के लिए जंगल में चला गया !

ऐसे शेर का दर्शन किसी बकरी को हो तो वह बकरी शेर नहीं बन सकती; चाहे कितने भी शेरों का दर्शन उसे क्यों न हो। लेकिन उपनिषदों ने कहा है कि चूँकि हम सारे शेर हैं, वास्तव में शेर हैं; इसलिए किसी शेर का दर्शन होने पर हम तत्काल शेर बन सकते हैं। इस तरह सन्तों के चरित्रों में हमें अपना दर्शन होता है; आत्मशक्ति का भान होता है। सन्तों के जीवन में हम अपना असली रूप देखते हैं, जो हमारे भीतर छिपा होता है। इस दृष्टि से चार साल पहले तक जो चरित्र हमने देखा, उसका ध्यान हमें करना चाहिए; उसका चिन्तन करना चाहिए, ताकि हमें भी अपनी शक्ति का भान हो।

कल्याण-मार्ग का कल्याणकारी आवाहन

जो काम मैंने उठाया है, वह दीखने को तो छोटा-सा दीखता है, पर है अत्यन्त महान् ! जैसे पहले स्वराज्य की यानी राजकीय आजादी की मांग थी, वैसे ही आज आर्थिक क्रान्ति की मांग है। स्वराज्य से यह मसला कम महत्त्व का नहीं। और मैं कर भी क्या रहा हूँ? अपने दुर्बल पाँवों से गांधीजी के ही मार्ग पर चलने की मेरी कोशिश है। जो मार्ग उन्होंने दिखाया, वह हिन्दुस्तान की परम्परा का मार्ग है; हमारा अपना मार्ग है। यदि हम लोग यह समझ जायेंगे और उस शेर का रूप ध्यान में लायेंगे तो हम भी चिन्तन से शेर बन जायेंगे। यह नहीं कहेंगे कि वह तरीका गांधीजी का ही था। यदि हम सन्तों के चरित्रों को अपने से अलग रख देंगे, तो अपनी आत्महत्या ही कर लेंगे। सन्तों के चरित्र में उनका नहीं, अपना निज-रूप देखना पड़ता है। हमें समझना चाहिए कि हम सारे आत्मरूप में उतने ही महान् हैं, जितने वे थे। हममें वह शक्ति छिपी है, इसलिए हम उस शक्ति

का आवाहन करें और विश्वास के साथ उस महापथ पर कदम रखते चले जायें, तो हमें धीरे-धीरे सत्य-दर्शन होगा और हमारे सभी मसले हल हो ज़ायेंगे।

इटावा (उ. प्र.)

३०.१.१९५२

: ३ :

उत्पादक श्रम के पुरस्कर्ता

सचमुच हम-आप अत्यन्त भाग्यवान् हैं, जो इस देश में जन्म पाये हैं। इस देश पर अनादिकाल से आज तक परमेश्वर की बड़ी प्रीति दिखायी देती है। निरन्तर यहाँ उसकी कृपा बरसती आ रही है। इतिहास में जहाँ तक स्मरण पीछे जा सकता है, वह हमारे लिए आज तक अनेक सत्पुरुषों को भेजता आया है।

मेरा महाभाग्य

श्री शंकराचार्य ने एक बड़े ही सुन्दर श्लोक में मानव-जीवन के सौभाग्यों का वर्णन किया है:

मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ।

अर्थात् 'मानव-देह की प्राप्ति पहला सौभाग्य है। मुक्ति की तड़पन है, दूसरा सौभाग्य। और महापुरुष के आश्रय का लाभ, उनका मार्गदर्शन है तीसरा सौभाग्य !

मैं अपने जीवन की ओर देखता हुआ शंकराचार्य के इस वाक्य पर विचार करता हूँ, तो मेरा हृदय आनन्द से उछलने लगता है। कहता हूँ कि मैं परम धन्य हूँ जो मानव के रूप में जनमा, मुक्ति की धुन लगी और महापुरुषों का सत्संग भी मिला। यह मुझे ही नहीं, हम-आप सबको सौभाग्य प्राप्त है। इतना बड़ा मार्गदर्शन न केवल मेरे जैसे एकआध आदमी को मिला, बल्कि लाख-लाख लोगों ने उस मार्गदर्शन में देश की आजादी और अपनी जीवन-शुद्धि के प्रयत्न किये।

एक महीने पहले की बात है। यहीं हमारे वर्धा में, सेवाग्राम में सारी दुनिया के लोग जमा हुए थे। एक-एक देश के हीरे ही थे वे। जिस प्रकार दही बिलोकर मक्खन निकाल लिया जाता है; उसी तरह वे अपने-अपने राष्ट्र के मक्खन थे। उन सबके जी में एक ही अरमान, एक ही उत्कण्ठा

थी कि सारे जगत् में शान्ति हो। समूची दुनिया में परमेश्वर का राज्य हो। जिस प्रकार स्वर्ग में उसका राज्य है उसी प्रकार इस पृथ्वी पर भी उसी का राज्य हो। सब कोई एक दूसरे के भाई-भाई बनकर रहें। तुकाराम ने कहा है:

आमुचा स्वदेश, भुवन-त्रयामध्ये वास ।

‘हमारा स्वदेश कोई छोटा-मोटा नहीं, हम त्रिभुवन में रहते हैं।’

माया-बापांची लाडकी , कळो आलें हें लौकिकी ।

‘सारी दुनिया में यह जाहिर हो गया कि यह तुकाराम माँ-बाप का लाड़ला है।’ इस प्रकार ‘इस दुनिया के हम सब बालक भी परमेश्वर के लाड़ले बनें और मांगल्य के सिवा दूसरी कोई वाणी ही न निकले’ यही उत्कण्ठा लेकर समूचे संसार से महापुरुष यहाँ इकट्ठे हुए थे। मुझे वहाँ लिवा ले गये थे बोलने के लिए। मैं उनसे कया कहता ? भक्तिपूर्वक प्रणाम कर छुट्टी पा ली। आखिर उन्हें चार शब्द लिख दिये। किन्तु उनका स्वरूप था ‘अपने मन का अपने मन से संवाद ।’ उन लोगों को कुछ बोध देने की बुद्धि तो मेरे पास थी नहीं, क्योंकि मुझे वे हरि-स्वरूप जो दिखायी दे रहे थे। उनमें से एक-एक ने कितनी तपस्या की, कितने कष्ट सहे ! एक-एक का इतिहास मानो रामायण के पांत्रों का चरित्र था !

ये लोग हमारे यहाँ आये। इन महान् पुरुषों के चरणों का शुभ-स्पर्श हमारी भूमि को हुआ। यह कैसे बना ? हमारा महान् सौभाग्य है इसीलिए । गांधीजी गये। उनके रहते ही ये सब आनेवाले थे, लेकिन गांधीजी के जाने के बाद तो इन्होंने यहाँ का आने का अपना संकल्प और भी पक्का किया। हमारे यहाँ की टूटी-फूटी संस्थाओं को उन्होंने देखा। अत्यन्त उदार अन्तःकरण से हमारा बखान किया और यह कहकर यहाँ से विदा हुए कि ‘हमने यहाँ पवित्रता पायी। हमने अनुभव किया कि जो महापुरुष यहाँ अनेक वर्षों तक रह चुका है, उसकी सुगन्ध आज भी इस भूमि में

फैली हुई है।’ यह जो हमारे भारत देश का सौभाग्य है और वर्धा का विशेष सौभाग्य है, उसकी चर्चा करना क्या मेरे लिए आवश्यक है ?

कहाँ विरासत और कहाँ हम ?

लेकिन यदि किसी को गर्भ-श्रीमन्त पिता से बड़ी जायदाद मिले, पर स्वयं उसमें पुरुषार्थ का अभाव हो, तो पिता की जायदाद उसे शोभा नहीं देती । उसके पास वह टिकती भी नहीं। उल्टे, दौलत के कारण उस मनुष्य का असली रूप प्रकट हो जाता है। लोग बोलने लगते हैं : ‘पिता कैसा था ! कितना मेहनती, कैसा एक-वचनी, कितना दक्ष और यह पुत्र ! जिसने अनायास ही पिता की सम्पत्ति पायी और … ।’ सफेद पर काले दाग की तरह पिता के सद्गुणों की पृष्ठ-भूमि पर बेटे की बुराइयाँ और भी भद्दी दिखाई देती हैं।

छुटकारे का मार्ग गांधी ने बताया

यदि हमारा भाग्य बड़ा है तो हमारी जिम्मेवारी भी उतनी ही बड़ी है। परमेश्वर की योजना ही ऐसी है कि वह जिसे अधिक सौभाग्य देता है, उसकी कसौटी भी अधिक करता है। उससे उसे आशा भी बड़ी होती है। यदि मैं कहूँ कि सारी दुनिया इस समय इस भारत-भूमि से आशा रखती है, तो आप किंचित् भी अतिशयोक्ति न समझें। सारी दुनिया आज संत्रस्त है। वह छुटकारा चाहती है। वह एक चक्कर में फँस गयी है। उसे रास्ता नहीं सूझ पड़ता। दुनिया के सभी समझदार लोग मानते हैं कि जो कुछ गांधीजी बतला गये हैं उसी में हो न हो, कोई-न-कोई मुक्ति का मार्ग है।

जनरल मैकआर्थर एक उत्तम फौजी सेनानी है जिन्होंने पिछला जागतिक युद्ध जीता, उन सेनापतियों में वह गिना जाता है। लेकिन गांधीजी के जाने पर उसने ये उद्गार प्रकट किये कि ‘आज नहीं तो कुछ वर्षों बाद गांधीजी जो मार्ग दिखा गये, उसे स्वीकार करने के सिवा और कोई चारा ही नहीं।’ गांधीजी के बारे में अनेक व्यक्ति बोले, पर मैकआर्थर की बात मेरे मन में घर कर गयी, क्योंकि वे एक सैनिक, युद्ध-विशेषज्ञ के शब्द थे। जो फौज में रहता, बरतता, खपता और

सीखता रहा, फौजी संस्कार ही दृढ़ से दृढ़तर रूप में पाता रहा, सैन्य-विशेषज्ञ कहलाया, आज भी जो फौज ही में है और कल कोई युद्ध छिड़ने पर सेनानी बनकर हिंसक साधनों द्वारा लड़ेगा भी, उसके ये उद्गार हैं कि "भाइयो, छुटकारे का मार्ग गांधी ने बताया।'

नया नहीं, फिर भी नया

यों गांधीजी ने नया कुछ भी नहीं बताया। यह जो सामने सूरज निकला है, वह कोई नया नहीं। लाखों बरसों से निकलता आ रहा है। लेकिन रात्रि के अन्धकार के बाद प्रतिदिन वह नूतन ही होता है। पुरानी पीढ़ी के बाद नयी पीढ़ी के लिए भी वह नया ही होता है। कल का सूरज आज के सूरज से अलग थोड़े ही है। पर जब नित्य नया अन्धकार फैलता है, तो सूरज भी नित्य नया-नया होता है। समाज में समय-समय पर मलिनता आती रहती है और उसे बुहारकर साफ करनेवाले जो कोई पुरुष आते हैं, वे उस-उस युग के लिए नये ही प्रतीत होते हैं। वास्तव में नये वे ही होते हैं। उनके पास की झाडू वही पुरानी होती है। पुराने भंगी जो काम करते, वही भंगी-काम वे भी करते हैं। वही झाडू, वही मैला और साफ करने की रीति भी वही ! इतना होते हुए भी वह सारा काम हर युग के लिए नया मालूम होता है। हम रोज नहाते हैं, क्योंकि देह रोज मलिन होती है। कल जो स्नान किया, वही स्नान आज करते हैं। लेकिन आज का स्नान नया होता है। वह हमें नयी ताजगी देता है। नयी स्फूर्ति मालूम होती है। नये उत्साह का अनुभव होता है। यही हाल समाज का है।

गांधीजी ने नवीन कुछ नहीं बताया। तुकाराम ने कहा: "हम वैकुंठवासी, उसकी आज्ञा से यहाँ इस भूलोक पर आये हैं।" किसलिए ? क्या कुछ नयी बात बतानी है ? नहीं। 'ऋषि जो कुछ कह गये, उसी पर सचाई से अमल करने, ठीक तरह से व्यवहार और आचरण कर दिखाने के लिए आये हैं।' ईसा ने भी यही कहा था "भाइयो, मुझे नया कुछ कहना नहीं है। जो कुछ पुराना है, उसे ही ठीक हजम करके, आत्मसात् करके आपके आगे रखता हूँ। गांधीजी ने ऐसा ही कहा। इसलिए नया कुछ नहीं, हमारे लिए नया है।

तो, हमें जो कुछ शिक्षण मिला, उस पर दुनिया के और लोग जब अमल करेंगे करें; कम-से-कम हम तो उस पर अभी अमल करें—दुनिया की, दुनिया के महापुरुषों की यही अपेक्षा है। मेरे जैसे टूटे-फूटे आदमी की ओर भी वे इसी आशा से देखते हैं। वे मानते हैं कि चूँकि वह शक्स गांधीजी के पास रहा है, इसमें कुछ-न-कुछ होगा ही। मैंने उनसे कहा : 'ठीक है, आप लोग ऐसी ही मानें। आपकी यह श्रद्धा ही मुझे बलवान् बनायेगी। आप हमारे बारे में ऐसी ही आशा रखते चलें। आपकी आशा से हमें बल मिलेगा।' इसलिए हमें यह पहचान कर बरतना चाहिए कि सारी दुनिया हमसे क्या आशा रखती है।

स्वराज्य तो सुविधा-मात्र

मैं बहुत बड़ी बात नहीं कहूँगा। सिर्फ एक मामूली-सी बात बतलाता हूँ। ऐसे प्रसंग अन्त:शोधन के होते हैं। हम अपने भीतर देखें, निहारें और ऐसे प्रसंगों पर कुछ शुभ-संकल्प करें। एक बात मेरे दिल में बहुत दिनों से आती रही है। आज इस देश को उत्पादन की अत्यन्त आवश्यकता है। सब कहते हैं, स्वराज्य तो आया, लेकिन दारिद्र्य नहीं गया। जाय भी कैसे ? यदि कोई कहे सबेरा हुआ, लेकिन मैं नहाऊँगा नहीं, तो कैसे कह सकूँगा, 'स्नान कैसे होगा ?' स्नान का प्रबन्ध हो गया है। लेकिन सिर्फ प्रबन्ध हो जाने से कया बिना किये ही स्नान हो जानेवाला है ? स्नान करना ही पड़ता है। इसी प्रकार जब तक स्वराज्य नहीं था, तो सुविधा भी नहीं थी कि हम अपने देश की लक्ष्मी को परिपुष्ट कर सकें । अब यदि सुविधा हो गयी तो उसका यह अर्थ नहीं कि अपने-आप लक्ष्मी का निर्माण हो जायेगा। हमें उसका निर्माण करना होगा।

उत्पादक-श्रम की उपासना करें

इसलिए यदि आप और हम सब एक छोटा-सा व्रत लें कि जब तक प्रतिदिन शरीर-परिश्रम से कुछ उत्पादन न कर लें, खायेंगे ही नहीं; तो कितना आनन्द होगा ! गांधीजी को यह चीज बहुत भाती थी और अपने उदाहरण से उन्होंने इसे कर भी दिखाया। जिस दिन वे गये, उस दिन भी

शरीर-परिश्रम करके ही गये। अन्य सेवा भी वे करते। हम भी अपनी दृष्टि से करें। उन सेवाओं का कोई मूल्य नहीं, ऐसी बात नहीं। फिर भी थोड़ा ही क्यों न हो, उत्पादन अवश्य करना चाहिए। उत्पादन में हमारा हिस्सा रहे। गोवर्धन उठाने में हरएक का हाथ लगे। शिक्षक बच्चों को पढ़ाते हैं, तो वह उत्तम काम है। न्यायाधीश न्याय देता है, तो वह उत्तम सेवा है। व्यापारी प्रामाणिकता से चीजें देता है, तो वह भी उत्तम व्यवसाय है। ये सब काम उत्तम और आवश्यक होने पर भी शिक्षक, न्यायाधीश और व्यापारी को चाहिए कि थोड़ा-सा उत्पादन भी करें। बच्चे भी करें और बूढ़े भी करें। यदि हम यह व्रत ले लें तो हमारी बुद्धि सुपुष्ट होगी। दुनिया ने हम पर जो जिम्मेवारी डाली है, उसे उठाने में हम समर्थ होंगे। यह एक छोटी-सी उपासना है। उपासना होती तो है अल्प, लेकिन उसका परिणाम होता है महान्। धर्मशास्त्रकारों ने हमें उपासना की महिमा सिखायी, पर हमने उसका आचरण नहीं किया। 'देश के लिए कुछ-न-कुछ निर्माण किये बिना मैं भोजन नहीं करूँगा' , यह व्रत छोटा बालक लेगा, उसकी माँ लेगी, उसके बूढ़े दादा लेंगे, तो सब मिलकर देश में ऐसी शक्ति निर्माण करेंगे, जिसके आगे कोई भी हिंसा टिक नहीं पायेगी।

कर्म-कुसुम ईश्वर-पूजा का सर्वोत्तम साधन

हिंसा इस कारण पैदा नहीं होती कि लोगों को उसकी बहुत बड़ी रुचि है। बल्कि वह भुखमरी की बदौलत पैदा होती है। अनेक लोगों को आज भूखों रहना पड़ता है। स्पष्ट है कि ऐसी हालत में दुनिया में शान्ति रहना असंभव है । प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन का व्रत लें, यही इसका उपाय हो सकता है। गांधीजी ने कहा : 'भाइयो, सूत कातिये ।' एक बार कहा: 'इस बूढ़े की बात आज आपके दिल में नहीं जमेगी, लेकिन कभी-न-कभी जमे बिना नहीं रहेगी ।' अब वे गये, हम पर उनका दबाव नहीं रहा। हम स्वतन्त्र हैं कि शुद्ध विचार करें और उनके कथन में जो योग्य दिखायी दे, उसे ग्रहण करें । ग्रहण करने के लिए हम स्वतंत्र हैं और छोड़ देने के लिए भी स्वतन्त्र। भगवान् ने अब उनका मोह हमारे लिए नहीं रखा। विचार परख लेने के लिए हम अब अधिक योग्य हैं।

इसलिए अब तय कीजिये कि नित्य कुछ-न-कुछ उत्पादक श्रम करेंगे। सूत कातने का ही उद्योग किया जाय, ऐसा मेरा आग्रह नहीं। कोई तय करें कि 'नित्य थोड़ा पीसूँगा।' कोई बगीचे में काम करने का तय करें। कोई महानुभाव थोड़ा-सा भंगी-काम करने के लिए आगे आयें। इस तरह हम रोज कुछ उत्पादन का, कुछ शरीर परिश्रम का काम अवश्य करें। आखिर आप देखेंगे कि चरखे का काम ही ऐसा सरल है कि सब कर सकें। और काम भी, जो सध सकें, किये जा सकते हैं। लेकिन यदि हम ऐसा नियम कर लें तो, जैसा कि गीता ने कहा है, हम पायेंगे कि कर्म-द्वारा परमेश्वर की पूजा होगी। कर्म-रूप कुसुम ईश्वर-पूजा का सर्वोत्तम साधन है।

जागतिक युद्ध का डर नहीं

लोग कर्मण्य होंगे, तो उनका सारा आलस उड़ जायेगा। नित्य कुछ-न-कुछ निर्माण में हिस्सा लेंगे तो दूसरों से मत्सर, द्वेष, बिना कुछ किये खाने की वृत्ति, इन सारे दुर्गणों के कारण ही जो हिंसा आयी है वह दूर हो जायेगी। इन दुर्गुणों के दूर होने पर हिंसा ठीक वैसे ही दूर होगी, जैसे सूर्य के आगमन से अँधेरा दूर होता है। उसे दूर करने के लिए और कुछ करना नहीं पड़ता। फिर उधर शस्त्रास्त्रों में चाहे जितनी वृद्धि हो, हिंसा के कैसे भी बड़े शोध हों, कोई परवाह नहीं। मैंने तो उस दिन शान्तिवादी मित्रों से कह दिया कि मुझे आपके जागतिक युद्ध से तनिक भी डर नहीं लगता। जागतिक युद्ध से मैं कहता हूँ, 'भाई, आ, जितनी तेजी से आ सको, आ। आखिर तू थकनेवाला है, मैं नहीं। तेरे आने से जगत् बड़े वेग के साथ मेरी ओर आयेगा। इसलिए मैं तेरा स्वागत करता हूँ।'

सारांश, यदि हम सब शरीर-परिश्रम का व्रत ले लें, तो आप निश्चित समझिये, इस छोटे-से व्रत के सामने दुनिया की सारी अशान्ति हारे बिना नहीं रहेगी, टिक ही न पायेगी।

वर्धा

३०.१.१९५०

: ४ :

राष्ट्रपुरुष और सन्त-पुरुष

गांधीजी ऐसे महापुरुषों में थे, जिनका सारा जीवन जनता के लिए ही था। उन्हें न कोई निजी स्वार्थ था और न अहंकार ही। वैसे तो हर मनुष्य को दूसरों के दुःख में दुखी और दूसरों के सुख में सुखी होना चाहिए। यह केवल सत्पुरुषों की ही नहीं, मनुष्य-मात्र की पहचान है। किन्तु गांधीजी इससे भी बहुत अधिक थे ! वे दूसरों के दुःख से केवल दुखी ही नहीं होते थे, दूसरों के पापों से अपने को पापी भी मानते थे। दूसरों के पाप को अपना पाप माननेवाले स्वयं को ही दण्ड देने और उसे भुगतने के लिए तैयार रहते हैं। गांधीजी में यह खूबी अथाह स्तर तक पहुँच गयी थी। इसीलिए लोग उन्हें 'महात्मा' कहते । 'महात्मा' यानी जिसकी आत्मा इतनी विशाल कि हरएक के शरीर के साथ जुड़ जाय और हरएक के पाप-पुण्य अपने सिर उठा ले।

गांधीजी ने हिन्दुस्तान की और साथ ही अपनी निजी भी आजादी के लिए प्रयत्न किया । इसलिए उनकी गणना राष्ट्र-पुरुषों और सन्त-पुरुषों में भी होती है। लेकिन इससे भी बड़ी बात है, दूसरों के पापों से अपने को पापी मानना। ऐसे लोग मुक्त भी होना नहीं चाहते, जिस मुक्ति के लिए बड़े-बड़े महात्मा तक तरसते रहते हैं। मोक्ष की परवाह न कर, सबका पाप-पुण्य अपने सिर पर उठानेवाले परम भक्त होते हैं। प्रह्लाद ने कहा था : "प्राय: देव और मुनि अपनी मुक्ति चाहते हैं, इसलिए वे जंगल में जाते और तपस्या भी करते हैं। किन्तु **नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्षुरेकः**- इन कृपणों, दोनों को छोड़कर मैं मुक्त भी नहीं होना चाहता ।" महात्मा गांधी में प्रह्लाद की यह बात हमें दीखती है। प्रह्लाद को वे 'आदर्श सत्याग्रही' कहा करते। वे भी प्रह्लाद के रास्ते पर चलनेवाले, उसी पंक्ति के सत्पुरुष थे।

ऐसे महापुरुष का स्मरण करने से हमें अपनी आत्मा की शक्ति का भान होता है। जो शक्ति ऐसे महापुरुषों की आत्मा में होती है, वही हम सबमें भी हो सकती है, इसका भान वे ऐसे पवित्र दिन पर हम सबको कराते हैं।

२.१०.१९५४

: ५ :

गांधी बाबा का मेला

मेरा हिमालय यहीं

गांधीजी को सारी दुनिया 'महात्मा गांधी' के नाम से पहचानती है, लेकिन आप-हम, सबके लिए वे बापू थे। हम उन्हें बापू के नाम से पहचानते थे। 'महात्मा' तो वे थे ही, लेकिन उनका सारा महात्मापन, सारा साधुत्व, उनके सब गुण, सारा ज्ञान, सारी तड़पन, अपार निष्ठा और भक्ति हम लोगों की सेवा के लिए ही थी। कुछ लोग उनसे कहने लगे: "आपने अब तक बहुत सेवा की, आपकी बातें अब लोगों को भाती नहीं, इसलिए आप हिमालय चले जाइये।" उन्होंने जवाब दिया: "भाइयो, मैं आपकी सेवा के लिए हूँ। यदि आप सब लोग हिमालय जायें, तो आपकी सेवा के लिए मैं भी आपके पीछे-पीछे आऊँगा। लेकिन जब तक आप यहीं रहते हैं, तब तक मेरा हिमालय यहीं है।"

जीवन भर जनता की सेवा में उन्होंने चन्दन के समान अपना शरीर घिसाया। वे कहते कि "जनता की सेवा के लिए यदि मेरे शरीर का उपयोग होता हो तो इस देह की पूरी आयु, यानी सौ-सवा-सौ साल जीने के लिए मैं तैयार हूँ। लेकिन उनके बालकों में से ही एक ने उनका अन्त किया और उनके थके शरीर को विश्राम मिला।

ईश्वरीय प्रेरणा

उस स्मृति के बाद आज तक इन दो वर्षों में कितने ही स्मरण हिन्दुस्तान में हो गये। कई घटनाएँ हुईं। इतनी सारी घटनाओं के घटने पर भी हम सबको उनकी याद आती है और उसके लिए हम यहाँ इकट्ठा हुए हैं। जब गांधीजी गये, तो मैं सोचने लगा कि इस मनुष्य ने हमारे और सारे मानव-समाज के लिए इतनी बड़ी तपस्या की, तो अब उनके देह-पतन के बाद हम किस प्रकार उस तपस्या का लाभ उठायें ? अवश्य ही कुछ लोग पूछते थे कि गांधीजी का स्मारक

कैसा हो ? उसकी क्या योजना हो ? पर मुझे वह स्मारक सूझता नहीं था। मैं यही सोचता कि 'उनका उपयोग किस तरह किया जाय, अपना और अपने लोगों का जीवन शुद्ध और समृद्ध बनाने के लिए उनकी पवित्र स्मृति का कैसे उपयोग करें ?'

एक दिन मुझे अचानक एक कल्पना सूझी। वह यह कि गांधी बाबा का मेला लगाया जाय, जिससे देहाती लोग जगह-जगह प्रेम से इकट्ठा हों, उनकी दी हुई शिक्षा का उच्चार करें, विचार करें और आचरण करने लग जायें। इसे ईश्वरीय प्रेरणा ही कहनी चाहिए कि सबने इस कल्पना को उठा लिया। यह प्रेरणा केवल मुझे एक तुच्छ-जीव की होती, तो सारे लोग कभी इसे न उठाते। सबको वह जँच गयी और यहाँ जैसे हम गांधीजी के स्मरण के लिए इकट्ठा हुए हैं, वैसे ही हिन्दुस्तान भर सौ-डेढ़-सौ जगह आज इसी प्रकार लोग जमा होकर अपना जीवन पवित्र करने का संकल्प कर रहे हैं।

मेले की विधि

मेला लगाना तय होते ही उस मेले में क्या किया जाये, यह सवाल उठता है। अपनी यह बड़ी जिम्मेवारी समझता हूँ कि इस वस्तु की चालना देने में मैं निमित्त बना तो उसका उपयोग सर्वथा शुद्ध होने की सावधानी भी रखूँ। नहीं तो आज तककइयों के मेले होते आये हैं। उनको एक 'यात्रा' का स्वरूप मिल जाता है, जिसमें केवल विनोद, मोद-प्रमोद आदि चलते हैं। वही, हाल इसका भी न हो, इसका उपयोग देश की उन्नति के लिए हो, यह सावधानी रखना अपना काम है। इस मेले की विधि क्या हो, यहाँ आकर क्या किया जाये, हम सब लोगों को तय करना चाहिए।

एक-एक ही गुंडी क्यों ? : इस सन्दर्भ में धीरे-धीरे एक-एक बात सूझती गयी। इस साल एक कल्पना सूझी। उसका प्रारम्भ पिछले साल ही हुआ था। हरएक अपने हाथ की कती सूत की एक गुंडी गांधीजी के स्मरण के तौर पर समर्पण करें, यही वह कल्पना है। कोई शौक से

कहते हैं : 'हम पचास गुंडियाँ देंगे' तो कोई कहते : 'पचीस गुण्डियाँ' । मैंने कहा : 'ऐसा नहीं चलेगा। हरएक की एक ही गुण्डी मुझे चाहिए, क्योंकि यह एक स्मरण है, एक भेंट है।' यहाँ कोई बड़ी भारी निधि इकट्ठा करने की इच्छा नहीं। इच्छा यही है कि हरएक स्वावलम्बन सीखे। अपने हाथ के सूत का कपड़ा हरएक अपने शरीर पर पहने। उसके लिए हरएक अपने पास चरखा रखे। आज अपना देश स्वतन्त्र है। उस स्वतन्त्रता की निशानी खादी के रूप में अपने शरीर पर प्रकट करे।

गांधीजी की यह बड़ी इच्छा थी। वे हमेशा कहा करते कि 'मेरे पीछे आप लोग शायद मेरी सारी बातें भूल जायें। लेकिन आखिर एक बात कोई भी नहीं भूलेगा कि गांधीजी ने देश को चरखा दिया।' चरखा नया नहीं निकला, वह पुराना ही था। लेकिन पुराने जमाने का चरखा लाचारी का था। उस समय चरखे के सिवा कोई चारा नहीं था। आज इस चरखे के खिलाफ मिलें खड़ी हैं और व्यवस्थित रूप से सारे किसानों का शोषण करने का काम चल रहा है। उन मिलों के होते हुए चरखा चलाना है, इसीलिए यह नया चरखा है। दीखने में यह पुराना दीखता है, फिर भी उसका रूप नवीन है। गांधीजी की सबसे बड़ी सीख यही थी कि हम सब लोग सूत कातकर अपना स्वराज्य अपने शरीर पर प्रकट करें। इसलिए आप लोग सूत भरपूर कातिये और वह अपने और अपने कुटुम्ब के उपयोग के लिए ही कातिये। यहाँ केवल एक गुण्डी प्रेम की निशानी के तौर पर, सूत कातने की दीक्षा के तौर पर, गांधीजी ने जो शिक्षा दी, उसकी स्मृति के तौर पर अर्पण करें, इतनी ही कल्पना है।

गुंडियों का विनियोग : यहाँ जो गुंडियाँ होंगी, हम उनका अत्युत्तम उपयोग करें। मैं सोचता था कि इन गुंडियों का विनियोग कैसे किया जाय ? मुझे अनायास सूझा कि आपके इस मराठी प्रान्त में आकर गांधीजी पन्द्रह साल रहे। उन्होंने यहाँ एक आश्रम भी चलाया। तो ये गुंडियाँ उस आश्रम को ही समर्पित की जायें। वहाँ अपने देश के गरीब लोगों के जीवन-शिक्षण की व्यवस्था हो और उसी काम में इन गुंडियों का विनियोग हो।

नया संकल्प करने का दिन

यह तो मेले की एक विधि हुई। यह मेला हर साल लगनेवाला है। तो, इस विधि के अलावा हर साल के लिए हरएक अपने मन में कुछ संकल्प करे, जो अगले मेले तक पूरा किया जाये। यह संकल्प गाँववाले मिलकर करें, उस पर सालभर अमल करें और उसे पूरा करके भगवान् के चरणों में समर्पण करने के लिए इस जगह अगले साल इकट्ठा होंगे, ऐसा सब मिलकर तय करें। इस तरह यह संकल्प करने का दिन है।

धानौली गाँव की मिसाल

मैं एक मिसाल देता हूँ। यहाँ से चार मील की दूरी पर धानौली नामक गाँव है। उस गाँव के लोगों से हमारे कार्यकर्ताओं का दो-चार साल से सम्बन्ध रहा है। मैं गाँववालों को समझाता था कि 'आप अपने गाँव में पाखाने खड़े कीजिये, मनुष्य के मैले की खाद बनाइये। उससे गाँव में सफाई रहेगी। आप लोगों को भंगी का काम करने में दिलचस्पी पैदा होगी तो अस्पृश्यता समूल नष्ट हो जायेगी। देश का धन बढ़ेगा। आज देश को अधिक उत्पादन की आवश्यकता है। तो, आप यह संकल्प कीजिये ।' सब गाँववालों ने मिलकर संकल्प किया कि 'गाँव के लिए सात-आठ पाखाने खड़े करेंगे, सब लोग उन्हीं का उपयोग करेंगे, बाहर कोई भी शौच नहीं जायेगा, मैले पर मिट्टी डालकर उसकी खाद बनायेंगे।' कहने में खुशी है कि उनका वह संकल्प ५०-६० प्रतिशत सफल हुआ। वास्तव में वह शत-प्रतिशत सफल होना चाहिए था, लेकिन कई कारणों से पाखाने अधूरे रह गये। फिर भी सारे पाखाने बनाने का काम चल रहा है। कल तक काम करके वे आज यहाँ आये हैं।

आत्मा की शक्ति

इस तरह यदि गाँववाले कुछ-न-कुछ शुभ-संकल्प करें और उसे पूरा कर अगले साल इस जगह आते जायें तो इस मेले का बहुत बड़ा उपयोग होगा। इससे देश में संकल्प का बल

बढ़ेगा। मनुष्य की मुख्य शक्ति देह की नहीं, आत्मा की है और आत्मा सत्यकाम, सत्य-संकल्प है। हम जो शुभ-संकल्प करें, वह सफल होना ही चाहिए। यह शक्ति आत्मा में यानी हममें भरी है, लेकिन वह प्रकट नहीं होती। इसलिए कि हम संकल्प करते ही नहीं। हम शुभ-संकल्प करें, भगवान् से मदद माँगें और सब मिलकर उस संकल्प को पूरा करें। शुरू में छोटे-छोटे संकल्प किये जायें। उससे शक्ति बढ़ती जाती है।

गांधीजी ने अपने जीवन में इस तरह से कई संकल्प किये, हिन्दुस्तान की जनता से भी कराये और वे पूरे किये। इसी कारण हिन्दुस्तान ऊपर उठा। गांधीजी का स्मरण करके हम भी उसी प्रकार संकल्प करते जायेंगे तो इस मेले में से शक्ति निर्माण होगी। यह एक कल्पना आज आपके सामने मैंने रखी।

पवनार

१२.२.१९५०

: ६ :

गांधीजी की सत्यनिष्ठा

बाल्य : दम्भरहित जीवन

एक बार ईसा से पूछा गया कि परमात्मा के स्थान में किनका प्रवेश होगा ? वहाँ एक टेबुल पड़ा था, जिस पर कुछ बच्चे बैठे थे। ईसा ने एक छोटे-से बच्चे को टेबुल पर खड़ा किया और कहा: “जो लोग इस बच्चे के समान होंगे, उन्हें परमात्मा के स्थान में प्रवेश मिलेगा ।’

उपनिषद् कहती है: **पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्**-(बृहदा.३.५.१) अर्थात् ‘ब्राह्मण को चाहिए कि ज्ञान को पचाकर बाल-भाव से रहे।’ ज्ञान पचाकर आज्ञानी बन जाय। उपनिषद् के इस वाक्य पर ‘ब्रह्मसूत्र’ (३.४.४७-५०) में चर्चा आयी है। कहा गया है कि बाल-भाव से रहना यानी क्या ? **किं बालवत् कामचारवादभक्षता**=अर्थात् जैसे बच्चे कहीं भी कीचड़ या गन्दगी में हाथ डालते हैं, कुछ भी खा लेते हैं, कुछ भी निगल जाते हैं, कया वैसा करें ? स्पष्ट है कि ऐसा पूछनेवाला भी कोई बच्चा ही होगा। इस पर उत्तर दिया गया: **अनाविष्कुर्वन्नन्वायात्** (ब्रह्मसूत्र ३.४.५०) यानी जैसे बच्चा दम्भरहित होता है। वह वैसा है, जैसा लोगों के सामने दीखता है। उसे छिपाना मालूम नहीं। वैसा ही होना चाहिए।

वर्डस्वर्थ की भी ऐसी ही एक कविता है: ‘हेवन लाइज…’ यानी बचपन में हम परमात्मा के नजदीक होते हैं।

मुख्य वस्तु यह है कि बच्चों में दम्भ नहीं होता। बच्चे गुस्सा भी करते हैं। देखा गया है कि छोटे-छोटे बच्चे बहुत गुस्सा करते हैं। उसे हम ‘मिसचीफ’ कहते हैं। वह उनका स्वभाव ही होता है। लेकिन ऐसा बच्चा आपको नहीं मिलेगा, जो छिपाना जानता हो यानी ‘झूठ’ को जानता हो। जबसे वह झूठ पहचाने लगे तो समझ लें कि उसने हमसे कुछ तालीम पा ली। माता-पिताओं ने उसे अपनी कुछ अक्ल दे दी।

गांधीजी में गुण अनेक थे तो दोष भी होने ही चाहिए। मानवमात्र में गुण और दोष दोनों ही होते हैं। लेकिन उनका सबसे बड़ा गुण यह था कि वे छिपाना नहीं जानते थे। उन्होंने लिखा भी है कि 'सत्य की ढाल में मैं पचासों खतरों से बच गया। सत्य को वे 'ढाल' कहते थे।

अहिंसा-सत्य : ढाल कौन, शस्त्र कौन ?

एक बार इसी पर बड़ी मनोरंजक चर्चा चली। मैंने किसी जगह एक मौके पर कहा कि 'सत्याग्रही का शस्त्र है सत्य और अहिंसा है ढाल' तो मेरे सामने बापू का एक वाक्य रखा गया जिसमें शायद यह था (अगर मुझे ठीक-ठीक याद हो) : 'अहिंसा है शस्त्र और सत्य है ढाल।' मैंने सुन लिया और कह दिया कि 'भाई, जो भी उनकी ढाल हो और जो भी मैंने ढाल बतायी हो। लेकिन मेरी अपनी ढाल है समन्वय, मेल-जोल करना।' मैं दोनों विचारों को कबूल कर लेता हूँ। सोचें तो सत्य को शस्त्र कह सकते हैं या ढाल भी। इसी तरह अहिंसा को भी शस्त्र और ढाल दोनों कह सकते हैं। फैसला करना कठिन है। लेकिन सत्य के साथ अहिंसा आती ही है। गांधीजी ने एक बार कहा कि 'अहिंसा तो मुझे पीछे मिली, सत्य की खोज करते हुए। ध्यान में आया कि सत्य की खोज अहिंसा द्वारा ही हो सकती है, हिंसा द्वारा नहीं।' आध्यात्मिक क्षेत्र में यह बहुत बड़ी खोज मानी जायेगी कि सत्य की खोज के लिए अहिंसा रास्ता है।

एक तो सत्य वह है, जिसकी व्याख्या करने की कत्तई जरूरत नहीं, जिसे हम और आप सभी जानते हैं। एक परम सत्य है, जिसकी खोज में सब लगे हुए हैं और अभी तक वह पूरी नहीं हुई है। खोज जारी है। मानव जितना उसके निकट जा रहा है, उतना वह दूर-दूर भाग रहा है। आज हम सत्य की कल्पना करते हैं तो ऐसा भास होता है कि उसके निकट पहुँच रहे हैं। उतने में दृष्टि विशाल हो जाती है और सत्य का और गहरा अर्थ ध्यान में आता है। फिर अन्तर पहले से कुछ बढ़ ही जाता है।

सत्य की खोज : पर्वतारोहण

हमें एक मिसाल याद आती है। बचपन में हम बहुत-बार पहाड़ों पर घूमे हैं। वहाँ पर्वत होते हैं पर्वत ! मामूली टीला या मामूली पहाड़ नहीं। 'पर्व-पर्व' जिस पर चढ़ना होता है, उसका नाम है 'पर्वत' । वहाँ पर्वत के नीचे खड़े रहते हैं तो लगता है कि इतना टीला चढ़ जायें तो पर्वत समाप्त है। पर उतना चढ़ गये तो एकदम दूसरा एक टीला सामने खड़ा हो जाता है और ध्यान में आता है कि इस पर और चढ़ना पड़ेगा। उस पर चढ़ गये तो और एक खड़ा मिलता है। उसके पीछे पुन: और एक है ही। इसी का नाम है पर्वत। हमारा यह जीवन भी पर्वत के समान है। आरोहण यानी उत्तरोत्तर चढ़ते जाना है। यहाँ कुछ प्राप्ति हो रही है, ऐसा लगता है तो उतने में ध्यान में आता है कि यह पूरी प्राप्ति नहीं, क-का-कि-की ही है। साध्य तो और आगे है। वेद में मंत्र आया है: **सानो: सानुम् आरोहन्**—एक शिखर से दूसरे शिखर पर चढ़ता चला जाता है। इस प्रकार एक सत्य का थोड़ा-थोड़ा आकलन होता है, उतने में ध्यान में आता है कि सत्य की गहराई में पहुँचे नहीं हैं, सत्य और आगे है। यह है सत्य की खोज !

चरम सत्य ही आधार

लेकिन एक सत्य ऐसा है, जो हर बच्चा जानता है और वही हम और आप, सबका आधार है। जिस सत्य की खोज करनी है, वह तो जीवन भर का प्रयास है। लेकिन जिसके आधार पर वह खोज करनी है वह मूल सत्य आपको, हमें, सबको—बच्चे तक को प्राप्त है। एक बार चर्चा चल रही थी कि सत्य की व्याख्या करो। मैंने मजाक में कहा : 'सत्य की व्याख्या आप चाहते हैं तो आपके लिए कर देता हूँ, सत्य यानी मिश्री' वह बोला : 'दरअसल मजाक कर रहे हैं।' मैंने कहा : 'अगर यह व्याख्या नहीं जँची तो समझ लीजिये कि सत्य यानी खजूर ।' मिश्री मीठी थी, फिर भी उसे नहीं जँची। मैंने सोचा कि उसे मिश्री नहीं, खजूर अच्छा लगता हो, तो कह दिया सत्य यानी खजूर। पर वह कहने लगा: 'यह भी ठीक नहीं, मजाक है ।' मैंने कहा : 'बताओ तब क्या कहूँ, जो मजाक न समझोगे ? मतलब यह कि सत्य तुम जानते ही हो, फिर व्याख्या क्यों पूछते हो ?'

सारांश, व्याख्या सही है या नहीं, यह जिस कसौटी पर कसा जाता है, वही सत्य है। कोई सत्य की व्याख्या करना चाहे तो कर ही नहीं सकता। हर चीज की व्याख्या जिसके आधार पर की जाती है, वह एक बुनियादी चीज है और वह अव्याख्येय (अनडिफाइण्ड) रहेगी। उसकी व्याख्या नहीं होगी, पर वह हम सबको मालूम है।

हम बच्चों को झूठ तब सिखाते हैं, जब पहली बार कहते हैं कि 'बच्चो, सत्य बोलो ।' उनके सामने सवाल खड़ा हो जाता है कि सत्य नहीं तो और क्या बोलने को होता है ? वह पहचानता ही नहीं कि सत्य के अलावा और कोई चीज बोलने की होती है। 'सत्य बोलो' इसी वाक्य से हम उसे असत्य में प्रवेश कराते हैं, यह अजीब-सी बात है। उसकी सत्य पर कितनी श्रद्धा होती है। माँ बच्चे से कहती है: 'वह देखो चाँद !' तो वह मान लेता है कि हाँ, चाँद है। उसके मन में शंका होती तो दस-पाँच लोगों से पूछ लेता कि 'भाई क्या यही चाँद है ? आपकी क्या राय है ?' पर उसने ऐसा नहीं किया। जहाँ माँ ने बता दिया कि 'यह चाँद है' तो एकदम मान लिया कि हाँ, चाँद ही है। क्योंकि उसे मालूम ही नहीं कि दुनिया में कोई झूठ बोल सकता है। लोग जो बोलते हैं, सो सत्य ही बोलते हैं।

जेलर की एक विशेष मनोवृत्ति (मेण्टालिटी) होती है। वह मानता है कि हर कोई झूठ बोलता है। अगर कोई झूठ नहीं बोलता तो उससे कहा जाता है 'सबूत पेश करो ।' उसने सबूत पेश किया तो मान लिया जाता है कि 'हाँ, यह झूठ नहीं बोला ।' पर बगैर सबूत के हरएक को झूठा ही मानना चाहिए। जेलर, पुलिस वगैरह को यही तालीम मिली होती है कि हरएक को बदमाश मानो । सबूत के बाद ही किसी को सज्जन मानो। पर बच्चे की मन:स्थिति इससे बिल्कुल उल्टी है। जो कहा जायेगा, एकदम सही मान लेगा। आगे कहीं वह झूठ साबित हुआ तो अलग बात है; लेकिन प्रथम श्रवण में वह उसे सत्य ही मानेगा, क्योंकि उसका चित्त बिल्कुल सरल है, टेढ़ा नहीं है।

आप देखेंगे कि मनुष्य की आँख भगवान् ने कैसी बनायी ? वह चाहे किसी कोण (एंगल) से देखे, सीधा ही देखती है। आँख कभी टेढ़ा नहीं देख सकती। सूर्य की किरणें भी बिल्कुल सीधी आती हैं। वे कभी टेढ़ी-मेढ़ी नहीं आ सकतीं । पानी उछल-कूदकर टेढ़ा-मेढ़ा जा सकता है, क्योंकि जमीन टेढ़ी-मेढ़ी है। लेकिन सूर्य की किरणें तो आसमान से आती हैं तो बिल्कुल सीधी ही आयेंगी । तो, जैसे सूर्य की किरणें या जैसे आँख की दृष्टि वैसे ही परमात्मा ने मानव का चित्त भी सीधा निर्माण किया। बचपन में वह सीधा ही जाता है, इसीलिए ज्ञान भी पाता है। यदि वह पग-पग पर शंका करता जाता, तो ज्ञान ही नहीं पाता। ये सारे जेलर वगैरह तीस-तीस, चालीस-चालीस साल काम करते रहते हैं, लेकिन उनका ज्ञान जरा भी नहीं बढ़ता। उनका दायरा शंका का है। उन दायरे को छोड़ जब वे सोचें तब न ज्ञान बढ़े ?

बापू की सत्यसिद्धि यत्न-सिद्ध, सहज नहीं

गांधीजी के बारे में हम सोचते हैं तो दीखता है कि उन्होंने अनेक प्रयत्न किये। धीरे-धीरे उनकी ताकत बढ़ती गयी। उनमें कोई जन्म-सिद्ध, अलौकिक चमत्कार नहीं देखा जाता, जैसे कपिल महामुनि में देखा गया। वे बचपन से ही एकदम ज्ञान बोलने लगे। भगवान् कहते हैं : **सिद्धानां कपिलो मुनिः**—सिद्धों में मैं कपिल हूँ। सिद्ध यानी जन्म-सिद्ध। कपिल मुनि को बचपन से ही ज्ञान था। माता उनको दूध पिलाने लगी। दूध की जरूरत तो बच्चों को होती ही है। कपिल महामुनि स्तनन्धय, बालक तो थे ही। लेकिन माँ के पास गये तो उन्होंने उसका दूध न पीकर उसे तत्त्वज्ञान का पाठ ही पढ़ाना शुरू कर दिया। ऐसी एक अलौकिक स्वभावज सिद्धि थी उनमें। या शंकराचार्य को ले लें। लगभग आठ साल की उम्र में वेदाभ्यास पूरा करके वे घर से निकल पड़े। पर भगवान् की कृपा से महात्मा गांधी ऐसी श्रेणी में नहीं थे। यदि होते तो हमारे काम न आते। फिर तो हम उनके सामने दोनों हाथ जोड़ते और कहते : ‘आप अपने स्थान में हैं और हम अपने स्थान में। आपका अनुसरण हम नहीं कर सकते। आप महान् हैं, सूर्यनारायण हैं, लेकिन हमें तो पृथ्वी पर ही चलना है। हमें और हरएक को मानना होगा कि गांधीजी जन्मत: एक सामान्य मनुष्य

थे। इसीलिए वे मेहनत कर विशाल बने। उनका सारा पराक्रम इसी जन्म का है। पूर्व-जन्म की सिद्धि लेकर आते तो वे हमारे लिए आदरणीय तो होते, पर अनुकरणीय नहीं। फिर भी उनमें कोई सिद्धि थी तो वह थी 'सत्य पर निष्ठा ।'

मुहम्मद का 'इंशा अल्लाह !'

इस समय मुझे याद आ रहे हैं मुहम्मद पैगम्बर। पैगम्बर भी एक सामान्य मनुष्य थे। मामूली व्यापार करते थे, जैसे दुनिया भर में लोग करते हैं। फिर भी उनमें एक बात थी कि उनका वचन कभी भंग न होता था, शब्द कभी टूटता न था। एक बार उन्होंने किसी को कोई वचन दिया और वह टूट गया—उसका पालन नहीं किया गया। तो, किसी ने उनसे पूछा : 'आप तो अल-अमीन हैं और आपका वचन कभी टूटा नहीं। यह कैसा मौका आया कि आपका वचन टूट गया ?' वे बोले: 'याद करता हूँ ।' याद कर उन्होंने कहा : 'मैंने वह वचन दिया था, उसमें इंशाअल्लाह नहीं बोला।' 'इंशाअल्लाह' का अर्थ होता है 'अगर अल्लाह ने चाहा !' मुहम्मद साहब के कहने का मतलब यह था कि मैंने जो वचन दिया, उसमें मेरा अहंकार था, कारण परमात्मा का स्मरण मैंने नहीं किया था। इसीलिए वह पूरा न हो सका। उन्होंने कहा : 'भाइयो, मैं 'अल-अमीन' नहीं, वह तो परमात्मा है। परमात्मा का जितना स्पर्श मुझे होता है, उतना ही गुण मुझमें आता है। वास्तव में वे सारे गुण परमात्मा के हैं ।' लेकिन अब तो मुसलमानों में रिवाज ही पड़ गया कि 'इंशाअल्लाह' कह देंगे और छूट जायेंगे। इंशाअल्लाह कहकर अपने वचन पर कायम रहने की बात अब नहीं रही। वचन से छूट जाने का मौका देना हो तो बोल दिया जाय 'इंशाअल्लाह।' 'क्यों कल मिलेंगे ?' 'नहीं, परसों आयेंगे इंशाअल्लाह ।' अगर नहीं आये तो 'इंशाअल्लाह !' इस तरह आज हम अल्लाह की आड़ में छूट जाते हैं।

जैसा बोलो, वैसा ही करो

यह कहानी मैंने आपको इसलिए सुनायी कि मुहम्मद पैगम्बर में अगर कोई मुख्य गुण था तो वह उनकी सत्य-निष्ठा ही था। मनुष्यों में भिन्न-भिन्न गुण हुआ करते हैं। कोई केवल

करुणापरायण होता है, कोई सत्य-प्रधान तो कोई पराक्रम-प्रधान । महात्माजी थे सत्य-प्रधान। उसी का आधार लेकर वे धीरे-धीरे सेवा करते आगे बढ़ते गये। यहाँ तक कि किसी मीटिंग में बोलना उनके लिए मुश्किल हो जाता था। मीटिंग में बोलना हो तो काँपते थे। कहते : 'क्या बोलना है, क्या कहा जाय ?' फिर धीरे-धीरे बोलते।

जानकी देवी को आप जानते ही होंगे—जमनालाल बजाज की पत्नी ! मराठी, गुजराती, हिन्दी, मारवाड़ी, उर्दू सब बोल लेती हैं। उनको किसी भाषा में हिचक ही नहीं होती । फिर, व्याकरण का डर तो बिल्कुल ही नहीं रखा है उन्होंने। जिनके पीछे व्याकरण का डर होता है, वे तो बेचारे डरते हैं। उनके व्याख्यान में ग्रामीणों को बड़ा मजा आता है। व्याकरण का सवाल ही नहीं। छोटे-छोटे वाक्य और वक्तृत्वसंपन्न बोलती हैं। इसके विपरीत जमनालालजी रुक-रुक कर बोलते, वे वक्ता नहीं थे। मैंने एक बार उनसे कहा : आप तो कैसा सुन्दर व्याख्यान देती हैं। लेकिन जमनालालजी दुनिया भर का काम करते हैं, पर बोलना उनके लिए मुश्किल होता है। बोलीं : इसका कारण है। मैंने पूछा : 'क्या ?' बोलीं : 'उन्हें हमेशा फिक्र रहती है कि जैसा बोलता हूँ, वैसा करना पड़ेगा। यह सोच-सोच कर वे बोलते हैं। लेकिन हमें तो यह सोचने से मतलब ही नहीं। तब रुकावट किसलिए ? इसीलिए हमें वक्तृत्व सध पाता है।'

गांधीजी का भी ऐसा ही था। उन्हें जनता के बीच बोलना मुश्किल होता था। धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते वह सध गया। इसका यही कारण था कि मुख से ऐसा शब्द न निकले जो गलत हो, सोचा हुआ न हो, सत्य की कसौटी पर कम उतरे—इसकी चिन्ता उन्हें रहती थी। इसीलिए वे पचासों संकटों से बचे, यह उन्होंने स्वयं लिख रखा है।

गांधी को मानव कायम रखें

आज उनके स्मरण में हम इकट्ठा हुए हैं, तो हमें समझना चाहिए कि उनका चरित्र अुकरणनीय है। यदि हमने उनको अवतार आदि बना लिया, तो मामला खत्म हो जायेगा। मानव

रूप में परमात्मा आ गये, ऐसा मानकर उपासना-भक्ति करना मनुष्य के लिए लाभदायी होता है। इसलिए मानवों को अंवतार की आवश्यकता होती है, यह सच है। फिर भी राम-अवतार है, कृष्ण-अवतार है तो बस हो गया ! अब इससे अधिक अवतारों की आवश्यकता नहीं। गांधीजी को अवतार बना रखा तो उनका हमें कुछ भी उपयोग नहीं होगा, सिवा इसके हम उनका नाम वगैरह लें। नाम लेने के लिए आधार चाहिए, तो राम-कृष्ण हैं ही । इनसे अधिक तीसरे की हमें कोई आवश्यकता नहीं।

खोज में उत्तरोत्तर का ही प्रामाण्य

इसलिए गांधीजी का जो मानव रूप है, उसे हम कायम रखें। उनका कोई संप्रदाय न बनायें। एक शब्द उन्होंने मुँह से निकाला तो वही प्रमाण, ऐसा न मानें। उस पर सोचें। वे भी हमेशा सोचते और बदलते थे। कहते भी थे कि ‘मेरे किसी भी पुराने वाक्य के साथ नये वाक्य का विरोध आता हो तो नया वाक्य ही प्रमाण समझो । पुराना गलत मानो, क्योंकि मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया हूँ। धीरे-धीरे सत्य की खोज होती गयी और धीरे-धीरे सत्य का भान हुआ। पुराना वाक्य पुरानी अक्ल का है। इसलिए यह मत समझो कि मोहनदास करमचंद गांधी नाम का जो लड़का था, जो बैरिस्टर होने के लिए लन्दन गया, उसने जो कुछ कहा और १९४८ में महात्मा गांधी के नाम से जाहिर मनुष्य जो बोला, दोनों एक ही हैं। ऐसा मानने की कोई जरूरत नहीं ।’

सत्य की खोजे में उन्हें जैसे-जैसे अपनी गलतियाँ महसूस हुईं, सार्वजनिक कार्य में उनसे जो कोई गलती हुई तो उसे प्रामाणिकता के साथ उन्होंने जाहिर कर दिया : “भाई हिमालयन ब्लण्डर ।” हिमालय से बढ़कर तो कोई ऊँचा पहाड़ नहीं है। मेरी उस पहाड़ जैसी यह गलती है।” अगर अपना भी दोष मालूम हो जाय तो कौन इससे ज्यादा लोगों के सामने उसे एकदम रख सकता है, छिपाता नहीं ? अजीब बात है। इतना होते हुए भी राजनीति में उनको सफलता मिलती गयी। इसका एकमात्र कारण यही है कि उनके सामनेवालों की जो राजनीति थी, वह झूठ पर

आधृत थी, जब कि उनकी अपनी राजनीति का आधार था सत्य। सत्य बोलना और जो शब्द बोलना, ठीक बोलना ! स्पष्ट है कि सत्य के सामने झूठ टिक नहीं सकता।

सत्य ही कुशल

गांधीजी के समय में राजनीति में जो लोग थे, ये उनसे अधिक कुशल थे, ऐसी बात नहीं। इनके पास केवल सत्य होता था और सत्य ही कुशल होता है। मुख्य बात यह कि सत्य के साथ जो चिपका रहता है, उससे बढ़कर दुनिया में आदमी नहीं। कुशलता के ऐंठ में जो असत्य का उपयोग कर लेते हैं, वे कुशल सिद्ध नहीं होते। कुशलता इसी में है कि हम सत्य पर चलें। तभी सब प्रकार से सुरक्षित रहकर सब खतरों से बच सकते हैं। सत्य का बड़ा परिणाम होता है। अन्त में एक छोटी-सी कहानी कहकर मैं इसे समाप्त करूँगा ।

नेता, वकील नहीं, सत्यनिष्ठ

सत्यवादी मनुष्य के शब्द पर दुनिया का विश्वास बैठता है। उससे लोगों को चेतना मिलती है। गांधीजी के आने से पहले भारत में बड़े अच्छे-अच्छे नेता थे। लेकिन उनके बारे में यह विश्वास नहीं था कि जैसा वे बोलते हैं, वैसा ही उनके मन में है। बल्कि उल्टा था कि कानून से बचने के लिए बोलते तो हैं कुछ, लेकिन उनके मन में बात कोई दूसरी ही होती है। सरकारी कानून के शिकंजे में पकड़े न जायें, इसलिए बच-बचकर बोलते हैं। यानी पुराने जमाने में माना जाता था कि नेता को वकील होना चाहिए । गांधीजी के आने तक लोगों का ऐसा ही ख्याल था। पर गांधीजी जब आये तो वे जैसा मन में होता, वैसा ही बोलने लगे।

गांधीजी के नाम पर पंजाब में अत्याचार शुरू हो गये। उधर अहमदाबाद में भी लोगों ने मारपीट शुरू कर दी। बात पुरानी सन् २०-२१ की होगी। उन दिनों हम दो-तीन साथी अहमदाबाद शहर और गाँव में गये। वहाँ लोगों को समझाने लगे कि ‘भाई, गांधीजी की मंशा यह नहीं कि आग लगायी जाय, गांधीजी के नाम से हिंसा की जाय। उन्होंने तो ऐसा कहाँ कहा है ?’ बोले :

'आप क्या समझते हैं गांधीजी को ?' गांधीजी क्या बोलते हैं, यह आप हमें समझाने आये हैं ?' दरअसल हम तो २५-३० साल की उम्र के जवान थे। हम उनसे ज्यादा क्या जानते थे ? वे बुजुर्ग आग लगाने के लिए निकले थे। उन्होंने आगे कहा : 'अरे धर्मराज बोले, भैम जाणें-युधिष्ठिर तो अपना सीधा बोलेगा, लेकिन उसके बोलने का जो अर्थ है व भीम को पता है।' गुजराती में भीम को भैम कहते हैं।

उसके बाद गांधीजी ने प्रायश्चित्त के तौर पर उपवास शुरू कर दिया। फिर लोग एकदम गंभीर हो गये और कहने लगे कि हाँ, यह ऐसा मनुष्य है कि जैसा बोलता है, वैसा ही इसके मन में होता है। गांधीजी ने एक नया रिवाज शुरू कर दिया कि जैसा बोला जाय, वैसा ही मन में हो और जैसा मन में हो, वैसा ही बोला जाय। परिणाम यह हुआ कि गांधीजी की धाक जम गयी। उनका शब्द बलवान् सिद्ध हुआ और शब्द के पराक्रम से ही उनका सारा पराक्रम हुआ।

वही शब्द-शक्तिः पुनः जगे !

लेकिन कहने में दुःख होता है कि उनमें जो सत्यनिष्ठा थी, उनके साथी हम लोगों में वह नहीं रही । इसलिए आखिर-आखिर में उनके शब्द के विषय में लोगों के मन में, विरोधी पक्षों के मन में, सरकार के मन में शंका पैदा होने लगी और शब्द की शक्ति टूटी। आखिर-आखिर स्वराज्य-प्राप्ति के समय जो कुछ बना, वह उसी का परिणाम था जो हमने देखा। गांधीजी को वह समय बहुत दुःख में बिताना पड़ा।

मैं कहना यह चाहता था कि उनका यह जो सत्यनिष्ठा गुण है, वह कठिन नहीं। सरलता से व्यवहार करते हैं तो कुछ षड्यंत्र रचना नहीं पड़ता। यदि हम कुछ असत्य की बात करेंगे तो उसके बचाव के लिए षड्यंत्र रचना पड़ेगा। लेकिन सत्य के लिए षड्यंत्र की जरूरत नहीं होती।

लक्ष्मीनारायणपुरी , बैनी (दरभंगा)

२.१०.१९६६

: ७ :

युग-प्रवर्तक विचार

गांधीजी के प्रयाण को आठ-आठ साल बीत चुके। जब हम महापुरुषों या पूर्वजों का श्राद्ध करते हैं, तो सोचते हैं कि उन्होंने हमारे लिए जो काम बाकी रखा, उसे हम कैसे पूरा करें ? उन्होंने जो विचार दिया, उसे हम आगे कैसे बढ़ायें ? यह काम हम श्रद्धा से करते हैं, इसलिए इसे ‘श्राद्ध’ कहते हैं। श्रद्धा यानी पूर्वजों का लेने योग्य अच्छा अंश हम मजबूती से पकड़ रखें।

श्राद्ध : सद्विचारों का स्मरण

कुछ लोगों का ख्याल है कि जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ विवेक नहीं होता। लेकिन हमारे ऋषियों ने इससे बिल्कुल उल्टी बात बतायी है। उपनिषद् में छोटे बालक नचिकेता की चर्चा है: **श्रद्धा आविवेश। सोऽमन्यत**—उसमें श्रद्धा का प्रवेश हुआ, तो वह सोचने लगा।’ श्रद्धा से मनुष्य को चिन्तन करने की प्रेरणा मिलती है। श्राद्ध में श्रद्धापूर्वक चिन्तन होना चाहिए। हमारी संस्कृति और सभ्यता में कुछ अच्छी चीजें भी चली आयी हैं और कुछ बुरी भी। उन सबको केवल ‘संस्कृति’ नाम देना गलत है। 'उन्हें संस्कृति और विकृति का मिश्रण’ कह सकते हैं। सदैव बुरी बातें छोड़कर अच्छी बातों या सद्गुणों का ही स्मरण करना तथा दोषों को छोड़ देना चाहिए। इसी का नाम ‘श्राद्ध’ है।

पूछा जा सकता है कि दोषों का चिन्तन क्यों न किया जाय, गुणों का ही चिन्तन क्यों करें ? बात यह कि जो दोष होते हैं, वे शरीर के साथ आते हैं, जब कि गुण आत्मा के साथ होते हैं। शरीर मर जाता है, तो उसके साथ उसके दोष भी समाप्त हो जाते हैं। पर आत्मा कायम रहती है, इसीलिए गुण भी कायम रहते हैं। तो, श्राद्ध के दिन हमारा कर्तव्य होता है कि अपने पूर्वजों से जो सद्विचार मिले हैं, उनका हम चिन्तन करें और उन्हें आगे बढ़ायें ।

गांधी : युग-प्रवर्तक सत्पुरुष

महात्मा गांधी एक सत्पुरुष थे, यह सारी दुनिया जानती है। लेकिन सत्पुरुष होने के अलावा वे एक नव-विचार-प्रवर्तक भी थे, यानी उन्होंने एक नया जीवन-विचार भी दिया। ऐसा नव-विचार सभी सत्पुरुषों के जरिये प्रकट नहीं होता। जो सत्पुरुष विशेष परिस्थिति में आता है, उसके मन में यह नव-विचार प्रकट होता है। वैसे सभी सत्पुरुषों का हृदय एकरूप होता है, लेकिन हरएक की बुद्धि और प्रतिभा अलग-अलग होती है। जिसकी प्रतिभा की जिस समय अत्यन्त आवश्यकता होती है, वह युग-प्रवर्तक हो जाता है। महात्मा गांधी ऐसे ही एक युग-प्रवर्तक सत्पुरुष थे। इसीलिए हमें यह पहचानना चाहिए कि उन्होंने जो नव-विचार दिये, वे क्या हैं ? उन्हें हम अच्छी तरह समझ लें।

कुछ तो ऐसी बातें होती हैं, जो अच्छी होती हैं और लोगों द्वारा दोहरायी जाती हैं। वे बातें हमारे जीवन में किसी-न-किसी तरह आ ही जाती हैं, लेकिन लोग जानते नहीं। मान लीजिये, हमने सुना कि आज किसी का खून हुआ, तो क्यों हुआ, यह जाने बिना भी हमें उस खबर से बुरा लगेगा। खून क्यों हुआ ? उसमें क्या हेतु था ? वह ठीक था या गलत ? ये सारी बातें बाद में सुनते हैं। मानव के जरिये मानव की हत्या हो, यह बिल्कुल गलत है—यह भावना मनुष्य के हृदय में स्थिर है। अनेक सत्पुरुषों ने हममें यह निष्ठा निर्माण की, तो यह भावनारूप विचार बन गया। यानी वह केवल विचार ही नहीं रहा, इन्द्रिय, मन और बुद्धि में भी पैठ गया। इसे ‘भावना’ कहते हैं। शराब पीना बिल्कुल गलत है, यह भावना हिन्दुस्तान में है। खून महापातक है, यह भावना भी दृढ़ है। व्यभिचार कभी अच्छा हो सकता है, यह कल्पना भी हिन्दुस्तान के लोग नहीं कर सकते। इस तरह कुछ भावनाएँ समाज में स्थिर हो गयीं, यह पूर्वजों और सत्पुरुषों की हम पर बड़ी कृपा है।

आज की आवश्यकता : सख्य भक्ति, दास्य भक्ति नहीं

इनके अलावा कुछ नये विचार होते हैं, जिनकी विशेष अवसरों पर आवश्यकता होती है और वे पैदा होते हैं, तो युग-प्रवर्तक बन जाते हैं। पुराने समय में मालकियत का एक बँटवारा हो गया था। यानी कुछ लोग मालिक होते तो कुछ लोग सेवक। उस समय दास्य भक्ति का प्रचार था। यानी स्वामी प्रेमपूर्वक अपने सेवकों का शोषण करे और सेवक करे स्वामी की प्रेमपूर्वक सेवा ! यही उन दोनों की निष्ठा मानी जाती थी। समाज अच्छा चलता था और किसी को कोई असन्तोष भी नहीं था। समाज के सामने उत्तम सेवक का आदर्श रखा जाता था। इस तरह समाज में स्वामित्व और सेवकत्व का बँटवारा हो गया था। उसमें कोई दोष ही नहीं, यह मैं नहीं कहता। जिस समय वह हुआ, शायद उस समय उसमें दोष न रहा हो। लेकिन आज वह चीज चलनेवाली नहीं । आज समाज कुछ ऊपर उठ गया है। मैंने कई बार कहा है कि आज के समाज को दास्य भक्ति के बदले सख्य भक्ति की आवश्यकता है। यानी स्वामित्व और सेवकत्व-भाव अच्छे अर्थ में भी आज समाज को रुचिकर नहीं। सख्य भक्ति का भाव जितना विशेष होगा, समाज के लिए उतना ही उपयोगी होगा। जब ऐसी आवश्यकता पैदा होती है, तब वह नया विचार लेकर युग-प्रवर्तक व्यक्ति समाज में पैदा होता है।

गुणों का भी बँटवारा गलत

पुराने जमाने में गुणों का भी बँटवारा हो गया था। अमुक-अमुक गुण ब्राह्मण में, अमुक क्षत्रिय आदि में हों, ऐसी व्यवस्था थी। फलस्वरूप माना जाता था कि ब्राह्मण में त्याग और शांति, क्षत्रिय में तेज और शौर्य, वैश्य में व्यापार और दक्षता और शूद्र में नम्रता एवं सेवा-वृत्ति अवश्य होनी चाहिए। पर अब इस समय का समाज सोचता है कि यह कैसा विचित्र बँटवारा है ? क्या नम्रता और सेवा की आवश्यकता ब्राह्मण को नहीं है या बिना शांति के शूद्र का काम चल जायेगा? क्या ब्राह्मण डरपोक होगा तो चलेगा और क्षत्रिय सेवा करने से इन्कार करेगा तो ठीक होगा ? जब इस तरह सोचते हैं, तो ध्यान में आता है कि गुणों का यह बँटवारा भी गलत है। इसका यह

अर्थ नहीं कि कुछ लोगों में कुछ गुण विशेष रूप से नहीं होते और दूसरों में दूसरे गुण। ऐसी बात नहीं है। किन्तु हम कहना चाहते हैं कि मानव का पूर्ण विकास तब तक नहीं होगा, जब तक गुणों का ऐसा विभाजन बना रहेगा, यानी ऐसी व्यवस्था रहेगी कि कुछ गुण कुछ वर्ग की ही बपौती हों।

कुछ लोग समझते और आज भी मानते हैं कि परिपूर्ण सत्य और परिपूर्ण अहिंसा साधु-संन्यासियों के लिए ही है। व्यवहार में परिपूर्ण नहीं, बल्कि मिश्र ही सत्य चलेगा। यदि अहिंसा भी चलेगी, तो मिश्र चलेगी। यानी संन्यासी के गुणों से दूसरों का नुकसान और दूसरों के गुणों से संन्यासी की हानि, ऐसा हरएक का अलग-अलग धर्म माना जाता था। संन्यासी का यह धर्म था कि उस पर कोई प्रहार करे, तो भी वह उसे क्षमा कर दे। इसके विपरीत गृहस्थ का धर्म था कि कोई उस पर प्रहार करे तो वह उसका बराबर जवाब दे। यदि गृहस्थ वैसा नहीं करता, तो उसकी स्वधर्म-हानि होती है और संन्यासी क्षमा नहीं करता तो वह उसकी स्वधर्म-हानि होती है। इस तरह गुणों में भी पूँजीवाद आ गया। सत्य, अहिंसा, धर्म आदि गुण सन्तों की पूँजी बन गये। सब लोग उनके लिए आदर रखेंगे, उनकी पूजा करेंगे, पर उनका अनुकरण नहीं। अनुकरण करने का अधिकार भी नहीं। अनुकरण करते हैं, तो उनके अपने धर्म की हानि होती है।

भिक्षा का वास्तविक अर्थ

माना जाता था कि संन्यासी का धर्म है कि उसे भिक्षा माँगनी चाहिए और उत्पादन नहीं करना चाहिए। लेकिन आज हम मानते हैं कि जो सर्वोत्तम धर्म हो, उसका सबको अनुकरण करना चाहिए। यदि सब लोग भिक्षा माँगना शुरू करेंगे, तो कौन किसके घर जाकर माँगेगा ? इसीलिए संन्यासी के आत्म-धर्म की रक्षा के लिए कुछ लोगों को उत्तम-धर्म अमल में नहीं लाना चाहिए। यानी कुछ लोग अधर्म का अवलम्बन करें, तभी इस उत्तम-धर्म को अवसर मिलेगा। यानी संन्यासी के लिए बड़ा खतरा होगा, यदि दूसरे लोग वास्तव में संन्यासी बन जायें। इसीलिए वे

अवश्य चाहेंगे कि दूसरे लोग गृहस्थ बने रहें, ताकि उन्हें भिक्षा मिले। आज की हालत में हम इस तरह गुणों का विभाजन नहीं चाहते।

अब युग बिल्कुल बदल गया और उसके निमित्त बने महात्मा गांधी। उन्होंने समझाया कि सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि जितने गुण संन्यासी के लिए लागू होते हैं, उतने ही गृहस्थ और सबके लिए लागू होते हैं। भिक्षा पर अवलम्बित रहना कोई धर्म हो ही नहीं सकता। भिक्षा का वास्तविक अर्थ है, अपनी सारी सेवा समाज को अर्पण करना और समाज जो कुछ भी दे, उसे खुशी से ले लेना। ये गुण गृहस्थ के लिए भी लागू होते हैं।

सद्गुण सामाजिक उपयोगिता की चीज

आधुनिक भाषा में कहा जाय, तो गांधीजी ने समझाया कि सद्गुण सामाजिक उपयोगिता के लिए होते हैं। इसके परिणामस्वरूप कुल जीवन-दृष्टि ही बदल गयी है। इस युग में यदि कोई स्वामी अच्छी तरह सेवक का पालन करता और उसे उत्तम खाना-पीना देता है, तो भी हमारा समाधान नहीं होता। हम कहते हैं कि उसे खाना-पीना तो अच्छा मिल गया, लेकिन उसका पूर्ण विकास कहाँ हो रहा है ? स्वामी केवल स्वामित्व-भाव से, दया-बुद्धि से सेवक का पालन-पोषण करता है, तो उससे उसके कुछ गुणों का विकास होगा, लेकिन पूर्ण विकास कैसे होगा ? जब तक स्वामी 'स्वामी और सेवक' दोनों नहीं बनता और सेवक 'सेवक और स्वामी' नहीं बनता, तब तक दोनों का पूर्ण विकास नहीं होता । भर्ता भार्या का उत्तम पालन-पोषण करता है और भार्या भर्ता की आज्ञाकारिणी है, तो दोनों ने अपने-अपने कर्तव्य पूरे किये। लेकिन दोनों को परीक्षा में १०० मार्क मिले, ऐसा हम नहीं कहेंगे। इतना ही किया तो हम कहेंगे कि दोनों को ५०-५० मार्क मिले। अब यदि वे १०० मार्क चाहते हैं, तो पति को पत्नी बनना होगा और पत्नी को पति। यानी स्त्री को स्त्री और पुरुष दोनों बनना होगा और पुरुष को भी पुरुष और स्त्री दोनों, तभी उनको १००-१०० मार्क मिलेंगे ।

ऋषियों की बीज-दृष्टि

यह बिल्कुल नयी दृष्टि है जो गांधीजी ने हमें दी। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इस दृष्टि के अनुकूल कोई वचन प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। अन्तर्मुख ऋषियों को ऐसे शब्दों में दर्शन होता था, जिनसे नये-नये अर्थ निकल सकते हैं। ऋषियों का दर्शन फलरूप नहीं, बीजरूप होता है। बीज में क्या-क्या नहीं रहता ? बीज का जहाँ विकास होता है, वहाँ हरी-भरी पत्ती, काष्ठांश, मीठे-मीठे फल पैदा होते हैं। इस तरह फल, पत्ती, काष्ठांश आदि सारा-का-सारा बीज में रहता है, पर बाहर से देखने पर मालूम नहीं पड़ता ।

आम की गुठली देखने से पता नहीं चलता कि इससे लाखों मीठे फल पैदा हो सकते हैं। उस फल की जो मिठास है, उसका उस लकड़ी के साथ क्या सम्बन्ध है ? यदि किसी को खाने के लिए आम के फल के बदले आम की लकड़ी दी जाय, तो क्या होगा ? वे दोनों एक ही वंश के हैं, एक ही बीज से पैदा होते हैं, फिर भी दोनों में विविध प्रकार का आविर्भाव पाया जाता है।

तो, प्रतिभाशाली योग-समाधि से जो दर्शन होता था, वह बीजरूप दर्शन था। फिर उस बीज से नया-नया आविष्कार होता ही रहेगा। जो लोग विकास को भी देखते हैं और बीज का भी ज्ञान रखते हैं उन्हें उस बीज में भी विकास का ज्ञान हो सकता है। इस तरह सिद्ध है कि गुणों की मालयिकत नहीं हो सकती।

मोगिलगिड्डा, हैदराबाद

१२.२.१९५६

: ८ :

गांधी : बहुमुखी प्रेषित-व्यक्तित्व

भगवान् दुनिया की सेवा के लिए महापुरुषों को भेजता है। यह उसका अपना धंधा ही है। ‘जब कभी आवश्यकता होगी, महापुरुषों को भेजा करूँगा’ यह उसने गीता में कहा है। उसने तय किया है कि ‘दुनिया में धर्मग्लानि होने पर महापुरुष आकर लोगों के चित्त रास्ते पर ले आयेंगे।’ हम यह देखते भी हैं। पर आखिर इस तरह का धंधा परमेश्वर को क्यों करना पड़ता है ? इसका उत्तर अभी किसी को नहीं मिला। वह ऐसा क्यों नहीं करता कि बार-बार महापुरुषों को भेजने का कष्ट न उठाना पड़े, ऐसी स्थायी व्यवस्था कर दे, जिससे लोग सदैव अच्छे रास्ते पर बने रहें।

वैज्ञानिक कोशिश करते हैं कि कोई एक यन्त्र ऐसा मिले या तैयार कर सकें, जो एक बार शुरू करें तो सदा के लिए चले। किन्तु वह प्रयत्न अभी सधा नहीं। छोटी-छोटी घड़ियाँ चौबीस घंटे चलती हैं, उन्हें बीच में चाबी देने की जरूरत नहीं पड़ती। चौबीस घण्टे के बाद फिर से चाबी देनी पड़ती है। कुछ घड़ियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें सप्ताह में एक दिन चाबी देनी पड़ती है। लेकिन ऐसी घड़ी, जो कि एक बार चाबी देने पर रोजे- कयामत तक चले, अभी तक नहीं बनी। जैसे वैज्ञानिकों को यह नहीं सधा, वैसे ही ईश्वर को भी वह नहीं सधा, यही दीखता है।

अथवा उसे ऐसा करने में मजा आता होगा। जैसे समुद्र में एक लहर उठती है, फिर नीचे जाती है। दूसरी उठती है, फिर नीचे जाती है। इसी तरह चैतन्य का भी खेल चलता है। ‘ऊपर उठना, फिर नीचे जाना, फिर ऊपर उठना और नीचे जाना’ चैतन्य का स्वभाव ही है। लेकिन ऊपर जाते और नीचे आते हुए भी आखिर वह ऊपर ही जा रहा है। जिन्हें इतिहास का अनुभव है, वे कहते हैं कि इस तरह दुनिया का विकास होता जा रहा है।

सन्तपुरुष और युगपुरुष

महापुरुषों के दो प्रकार होते हैं: एक, ऐसे महापुरुष, जो हमेशा के लिए कुछ-न-कुछ हिदायतें देते और लोगों को अच्छे मार्ग पर रखने की कोशिश करते हैं। ऐसे महापुरुष ‘सन्तपुरुष’

के नाम से पहचाने जाते हैं। वे लोगों को कुछ उपदेश देते हैं। कुछ लोग उनका उपदेश पूरी तरह अमल में लाते हैं, तो कुछ लोग उनकी चंद बातें ही मानते हैं। जो मानते हैं, वे उनका लाभ उठाते हैं, दूसरे उस लाभ से वंचित रहते हैं। वैसे सन्तपुरुषों का किसी पर कोई बोझ नहीं रहता। वे यही सोचते हैं कि हमारी आज्ञा न चले। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता कि उनकी सत्ता किसी पर चले। ऐसे सन्तों को परमेश्वर भेजा करता है। तभी दुनिया का यन्त्र चलता है। इन साधु पुरुषों के जरिये उस यन्त्र में कुछ-न-कुछ स्नेहन (लुब्रीकैण्ट) डाला जाता है और बिना घर्षण के वह चलता है। ‘इनके सिवा वह कुछ ऐसे भी महापुरुष भेजता है, जो दूसरे प्रकार के होते हैं। वे एक सामान्य नीति का उपदेश देते हैं, पर उससे उस जमाने की जो आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति होती है। जब लोगों की आवश्यकता और साधु का उपदेश, दोनों का मेल होता है, यानी जब आवश्यकता की पूर्ति होती है, तब वह पुरुष ‘युगपुरुष’ हो जाता है। महात्मा गांधीजी ऐसे ही युग-पुरुष थे।

अंग्रेजों का भयानक प्रयोग

अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को अपने हाथ में लेने के बाद एक बड़ा भारी पराक्रम किया। इसके पहले किसी ने भी ऐसा प्रयोग करने की हिम्मत न की थी। जिन पर सत्ता चलायी गयी और जिन्होंने सत्ता चलायी, दोनों के लिए वह भयानक प्रयोग रहा। उन्होंने सारे-के-सारे देश को निःशस्त्र बना दिया। किसी भी बादशाह ने ऐसा प्रयोग नहीं किया, जो दोनों के लिए खतरनाक हो। जो सत्ता चलाना चाहते हैं, उन पर रक्षा की जिम्मेदारी आती है। बाहर से हमला होने पर लोग प्रतीकार करने के लिए तैयार नहीं, भयभीत थे। अत: शासक के लिए वह प्रयोग खतरनाक था। जिन पर वह प्रयोग किया गया, उनके लिए तो वह खतरनाक था ही, क्योंकि वे निःशस्त्र होने से अपना बचाव भी नहीं कर सकते थे। लेकिन ऐसा खतरनाक प्रयोग उन्होंने किया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तान के लोगों में सिर उठाने की ताकत न रही, वे निरन्तर भयभीत रहे। प्रजा को अभयदान देना राजा का कर्तव्य है। हमारी राज्य-व्यवस्था में अभयदान को बड़ा महत्त्व दिया गया है। किन्तु अंग्रेजों के इस भयंकर प्रयोग से हिन्दुस्तान की कमर ही टूट गयी।

गांधीजी का असहयोग का मार्ग

अब सिर उठाने की आवश्यकता निर्माण हुई। उसके लिए कोई निःशस्त्र शक्ति चाहिए थी। हिन्दुस्तान में ऐसी आवश्यकता निर्माण न होती, तो उसे सदा के लिए सिर नीचे रखना पड़ता, गुलाम रहना पड़ता। ऐसे मौके पर महात्मा गांधी आये। वे कहने लगे : 'आत्मा में ताकत है, शस्त्र की आवश्यकता नहीं। हमने ही सरकार को सिर पर उठाया है। अगर चाहेंगे, तो फिर नीचे भी पटक सकते हैं। प्रजा के सहयोग के बिना कोई भी सरकार सत्ता नहीं चला सकती। इसलिए हम सब एक हो जायें और एक मांग करें। अगर वह पूरी न हुई, तो सत्ता के साथ असहयोग करें। हमें इस असहयोग के लिए जितना कुछ सहना पड़ेगा, उतना सहेंगे।' यह शक्ति सन्तपुरुष में ही हो सकती है।

गांधीजी ने जीवन बदल दिया

जहाँ लोगों की आवश्यकता महापुरुष के सदुपदेश से पूरी होती है, वहाँ वे सन्तपुरुष 'युगपुरुष' होते हैं। यह घटना महात्मा गांधी के बारे में अक्षरशः घटी। हिन्दुस्तान की परम ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी एक शक्ति का निर्माण आवश्यक था। इसीलिए भगवान् ने महात्मा गांधी का निर्माण किया। परिणाम यह हुआ कि मिट्टी में से मनुष्य निर्माण हुए और मनुष्य से देवता। वह पुरुष अकेला नहीं था। उसने सबको प्रकाश दिया और छोटे-छोटे बच्चे भी हिम्मत के साथ स्वराज्य का मन्त्र बोलने लगे। ऐसा युगपुरुष जब आता है, तो उससे उस राष्ट्र के लोगों के जीवन का विकास होता है।

बहुतों को आश्चर्य होता है कि गांधीजी ने जीवन की कितनी शाखाओं में विविध हिदायतें दी हैं। समाज-शास्त्र के बारे में उन्होंने काफी कहा है। राजनीति के बारे में तो उन्हें कुछ कहना है ही। तालीम के बारे में वे कुछ कहते ही हैं। ग्राम-उद्योग टूटने नहीं चाहिए, यह भी उनका कहना है। राष्ट्रीय एकता और भाषा की एकता के बारे में भी वे बोलते हैं। छूत-अछूत भेद मिटने की बात

उन्हें कहनी थी। इस तरह अनेकविध हिदायतें, जीवन की विविध शाखाओं में उन्होंने दी हैं। दुनिया के तरह-तरह के ग्रन्थ वे पढ़ते होंगे और उनमें से ये विचार निकले होंगे, ऐसी बात नहीं। यह विद्या पुस्तकों में नहीं होती। यह शक्ति उसके पास होती है, जो आत्मा का स्वरूप पहचानता है। उसे ये विचार सहज ही सूझते हैं।

मार्गदर्शक और सेवक

शंकराचार्य महान् पुरुष हो गये। रामकृष्ण परमहंस भी महान् थे। उन्होंने जीवन की सब तरह की बातें लोगों को सिखायीं और उनके जीवन में परिवर्तन ला दिया। वे सूर्यनारायण के समान दूर रहकर प्रकाश देते थे। शंकराचार्य ऐसे ही ऊँचे आकाश में दीखते हैं। रामकृष्ण भी एक तेजस्वी तारे के समान आकाश में रहकर प्रकाश देते हैं। हमें सूर्य की किरणों से आरोग्य मिलता है; लेकिन शरीर के किसी हिस्से में सूजन आने पर उसे सेंकना हो, तो उससे लाभ नहीं होता। उसके लिए अग्नि ही चाहिए, जो पास आकर, दास बनकर हमारी सेवा करे। सूर्यनारायण तो आपका गुरु बनता है, दास नहीं। वह प्रकाश देगा और उसमें आपको अपनी बुद्धि से काम करना होगा। वह आपका मार्गदर्शक बनता है, सेवक नहीं।

फिर भी अग्नि में जो शक्ति है, वह नहीं होती यदि सूर्यनारायण न होते। इसी तरह गांधीजी जैसे युगपरुष नहीं हो सकते, यदि शंकराचार्य जैसे महापुरुष न होते। वे दूर और उदासीन रहकर दुनिया की जो सेवा करते हैं, उसकी कीमत कम नहीं, बहुत ज्यादा है। मैं सत्पुरुषों की तुलना नहीं कर रहा हूँ। कौन ऊँचा है और कौन नीचा, वह नहीं कहता। सत्पुरुषों के प्रकार बता रहा हूँ। दोनों अपने-अपने ढंग के होते हैं।

श्रीकृष्ण अनोखे महापुरुष

लेकिन महात्मा गांधी से किसी को कोई डर मालूम नहीं होता था। बच्चों को वे अपने जैसे बच्चे ही लगते थे, इसलिए वे उनके साथ खेलते थे। बहनें भी समझती थीं कि ये अपनी एक बहन

हैं। इसलिए जैसे बहनें बहनों के साथ बातें करती हैं, वैसे ही खुलकर उनके साथ बातें करते। राजनीतिज्ञों को लगता था कि वे भी एक राजनीतिज्ञ हैं, इसलिए उनके साथ चर्चा करते। उनकी अक्ल और उनका अनुभव दूसरे लोगों में नहीं था। फिर भी उनके साथ बातें, चर्चाएँ और वाद भी कर सकते थे। उन पर गुस्सा भी करते और रूठ भी जाते थे। इस तरह यह एक बिल्कुल अपना ही कुटुम्बी मनुष्य है, ऐसा लोगों को भास होता।

ऐसा ही एक पुरुष पाँच हजार साल पहले यहाँ हो गया। उसका नाम था 'श्रीकृष्ण' । उसमें सूर्यनारायण की भी योग्यता थी और अग्निनारायण की भी। अर्जुन उससे कह रहा है: 'अरे, लड़ाई का मौका है, सारथी की जरूरत है।' कृष्ण ने कहा: 'हाँ, मैं तैयार हूँ, तुम्हारा सारथी बनूँगा ।' घोड़ों की सेवा के लिए भी वे तैयार थे। यानी अर्जुन को यह मालूम भी नहीं होता था कि यह अलग मनुष्य है।

यह शक्ति शायद महात्मा गांधी में भी नहीं थी । महात्मा गांधी से हमारी यह कहने की हिम्मत न होती थी कि 'बापू यहाँ गंदा हो गया है, जरा झाड़ू लगाइये ।' इतना अंतर तो रह ही जाता था। यद्यपि गांधीजी ने भंगी का काम किया और झाड़ू भी लगायी। लेकिन यह भान रहता ही था कि झाड़ू हमें लगानी है, उसके लिए उन्हें न कहना चाहिए। पर श्रीकृष्ण के लिए यह भी भान भूल गया।

इसीलिए श्रीकृष्ण के समान श्रीकृष्ण ही हो गये। सारे हिन्दूस्तान में उन्हें 'गोपाल-गोपाल' ही कहते हैं। यानी आप-आप नहीं, तू-तू कहते हैं। लगता है, मानो अपने दोस्त ही हों। इसलिए उनके साथ लोगों के झगड़े और आपसी लड़ाइयाँ भी चलती थीं। वे उन्हें ऐसे काम देते, जो मामूली नौकर को दिये जाते हैं। नम्रता की परिसीमा हो जाती है, जहाँ महापुरुष के महापुरुषत्व का खयाल भी किसी को नहीं रहता।

आखिर में जब अर्जुन ने भगवान् का विश्वरूप देखा, तो घबड़ा गया। तभी उसे यह भान हुआ कि जिसके साथ वह बोल रहा है, वह कितना महान् है। जिसे अग्नि समझा था, वह अग्नि नहीं, सूर्यनारायण है। हमने इसका अपराध किया, इसे अपना सखा कहा। फिर भी वह कहता है: 'तू इतना महान् है, तो भी मैं तुझे सखा मानता हूँ।' वह 'तू ही' कहता है, 'आप-आप' नहीं। गीता में हम उसे यह कहते पाते हैं कि 'मैं अपराधी हूँ, मुझे क्षमा कर :

एकोऽथ वाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।

केवल एक ही बार वह 'को भगवान्' (आप कौन हैं) कहता है और एक बार क्षमा माँग लेने के बाद 'तू-तू' ही कहता है। यह महत्ता भगवान् कृष्ण में थी।

'भारतीयार' ने 'कृष्णन्' (कृष्ण) पर एक वाक्य लिखा है। वह कभी माँ बनकर सेवा करता है। कभी बेटा, कभी भाई, कभी बाप, कभी सखा, कभी सखी, कभी गुरु तो कभी शिष्य बनता है और कभी दुश्मन भी हो जाता है।

कृष्ण के जैसे गांधीजी

भारत का यह बड़ा सौभाग्य है कि इस देश में ऐसे महापुरुष हो गये। लगभग उसी भगवान् श्रीकृष्ण की कोटि के महात्मा गांधी थे। यानी उनके लिए कभी किसी को संकोच न मालूम होता था। परिणाम यह हुआ कि जीवन के हरएक विषय में लोग उनसे पूछते थे। जब कभी आश्रमवासी का पेट दुखता, तो वह बापू से जाकर इलाज पूछता। मैं मित्रों से कहता : 'अरे, तुम कैसे लोग हो, मामूली पेट दुखने पर उसके लिए भी बापू से पूछते हो।' लेकिन वे सुनते न थे, छोटी-छोटी बातों के लिए उनके पास पहुँचते थे। बापू भी सारा काम छोड़कर एक-दो मिनट उनके लिए देते। अभी उनके लंबे-लंबे पत्र छप रहे हैं, उनमें भी आप देखेंगे कि वे ही बातें लिखी हैं : 'फलाना औषध लिया या नहीं ? बीमारी कौन-सी है?' इस तरह वे दूसरों के जीवन के लिए सोचते। यह उनका गुण नहीं, लोगों का गुण था, क्योंकि लोग, भी तरह-तरह के सवाल उनसे पूछते थे। इसलिए बापू

को झख मारकर विचार करना पड़ता था। क्या हम शंकराचार्य से यह पूछते कि हमारा पेट दुख रहा है, हम क्या करें ? लेकिन बापू की यह विशेषता थी।

गांधीजी की हिदायतों का चिन्तन

ऐसा एक महापुरुष भारत में हो गया, यह हमारा सौभाग्य है। उन्हें हम सब कभी भूल नहीं सकते। उन्होंने हमें सब कुछ दिया। वे इसी एक बड़ी बात का आग्रह रखते थे कि 'हरएक को अपनी बुद्धि से काम करना चाहिए, दूसरे की बात प्रमाण मानकर नहीं।' अब बापू हमारे बीच नहीं, उनके उपदेश ही हमारे पास हैं। हमारा कर्तव्य है कि जो प्रकाश हमें उन्होंने दिया, उसके आलोक में हम अपने पाँवों चलें। आज हिन्दुस्तान के सामने यह समस्या है कि उस 'राष्ट्र-पिता' ने हमें जो सब प्रकार के जीवन-विषयक विचार और हिदायतें दी हैं, क्या हम उनका वैसा उपयोग करते हैं ? हमें इसका उत्तर देना होगा। हम उनका स्मरण करते हैं, तो अपने पर ही उपकार करते हैं। उनके स्मरण से हमारा भी काम बनेगा, यही हमें सोचना चाहिए। हम कहना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के सामने आज ऐसे मसले नहीं, जिनका उत्तर महात्मा गांधी ने कहीं न दिया हो। आगे ऐसे प्रश्न आ सकते हैं, लेकिन अभी तक नहीं आये। इसलिए हमें उनसे मिली हिदायतों का चिन्तन अवश्य करना चाहिए।

गांधीजी का कालदर्शन : नयी तालीम

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद क्या-क्या मुश्किलें आयेंगी, इसका चिन्तन वे दस साल पहले से करते थे। स्वराज्य के दस साल पहले उन्होंने देश को 'नयी तालीम' दी और कहा कि 'हिन्दुस्तान को यह मेरी सबसे आखिरी और सबसे श्रेष्ठ देन है।' स्वराज्य प्राप्त हुए सात-आठ साल हुए, तब ध्यान में आ रहा है कि देश को शायद नयी तालीम का उपयोग हो। अब यह इसलिए सूझा कि कॉलेज और हाईस्कूल के लड़के अविनयी बन गये हैं। जब हमें यह दर्शन हुआ कि वे बात नहीं

मानते, अनुशासित नहीं, उच्छृङ्खल बन गये और देश के काम के लायक नहीं रहे, तब नयी तालीम सूझ रही है।

युगानुकूल सूत्र-यज्ञ

दूसरी मिसाल मैं देता हूँ। गांधीजी ने कई बार कहा था कि 'देश की उन्नति के लिए खादी और ग्रामोद्योग अत्यन्त जरूरी हैं, इसलिए हरएक को कातना चाहिए ।' इंग्लैण्ड के हरएक बच्चे को तैरना आना जरूरी है, क्योंकि वह देश समुद्र-परिवेष्टित देश है। इसी तरह जिस देश में जमीन का रकबा कम और जनसंख्या ज्यादा हो, वहाँ हर बच्चे को कातना सिखाना चाहिए। यह देश का 'डिफेन्स' (संरक्षण) है। भगवान् करे, विश्वयुद्ध न हो और हिन्दुस्तान उससे बचे। लेकिन अगर विश्वयुद्ध हो जाय और मान लीजिये, एक बम बम्बई की मिल पर, दूसरा अहमदाबाद की मिल पर और तीसरा इस नगरी पर गिरे, तो सारे-के-सारे मजदूर गाँवों में भाग जायेंगे। वे गाँव- गाँव से यहाँ पेट भरने के लिए ही आये हैं, मरने के लिए नहीं। तब पता चलेगा कि हिन्दुस्तान की हालत क्या होगी ? लोगों को नंगे रहने की नौबत आयेगी। इसलिए पहला काम और सबसे बड़ा काम सरकार को यही करना होगा कि बड़े-बड़े शहरों के रक्षण के लिए शस्त्रशक्ति (आर्मामेण्ट) खड़ी की जाय। उसके लिए इतना खर्च करना पड़ेगा कि गरीबों की कोई सेवा ही न हो सकेगी। इसलिए हम इसमें कोई लाभ नहीं देखते। इसके बदले अगर हर बच्चे को आप कातना सिखायें, तो देश बच जायेगा।

इसे एक यज्ञ समझकर करना चाहिए । प्राचीन काल में जंगल जलाना यज्ञ माना जाता था। पर आज जंगल बढ़ाना है, इसलिए पेड़ लगाना यज्ञ होगा। इसी दृष्टि से हम कहते हैं कि आपको टोकन के तौर पर कुछ समिधा काटनी चाहिए। पहले विद्यार्थी गुरु के घर समिधा काटकर ले जाता और कहता कि मैं आपकी सेवा में आया हूँ। यानी जंगल काटना भी एक सेवा मानी जाती थी। इस तरह जमाने-जमाने की मांग के अनुसार यज्ञ बदलता है। महात्मा गांधी ने कहा था कि हमारे देश की रक्षा के लिए हरएक को कातना आना चाहिए। देश के सामने मिसाल

रखने के लिए स्वयं वे रोज बिना भूले कातते और भगवान् की कृपा से आखिरी दिन तक कातते रहे। अगर भगवान् चाहता, तो उनका वह व्रत तोड़ सकता था और शाम को पाँच-साढ़े-पाँच के बदले दो-तीन बजे ही उन्हें उठा लेता। लेकिन ईश्वर अपने भक्त का बाना टूटने नहीं देता। इसलिए उस दिन उनका कातना हुआ। यह उनकी मिसाल हमें बलवान् बना सकती है।

भूदान-यज्ञ गांधीजी की राह पर !

मैंने कहा कि 'ऐसी समस्या खड़ी हो सकती है, जहाँ उनका उपदेश काम न भी दे।' पर आज तक ऐसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, जमीन के बारे में भी अपने ख्याल उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में 'फिशर' के साथ हुई चर्चा में बता दिये। 'स्वराज्य के बाद जमीन का क्या होगा?' यह सवाल उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा : 'जमीन बाँटी जायेगी, नहीं तो लोग कब्जा कर लेंगे।' उन्होंने जो हिदायतें दीं, उनका बहुत सौम्य उपयोग कर हमने काम शुरू किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जमीन पर सबका समान अधिकार होना चाहिए। साथ ही हर देहात में कर्म और ज्ञान का संगम करनेवाली तालीम होनी चाहिए। नहीं तो कुछ लोग हाथ से काम करनेवाले और कुछ केवल दिमाग से काम करनेवाले, ऐसे दो विभाग हो जायेंगे। अगर परमेश्वर की यही इच्छा होती, तो उसने कुछ लोगों को हाथ ही हाथ दिये होते और कुछ लोगों को सिर ही सिर । लेकिन हर शख्स को उसने दिमाग दिया और हाथ भी। इसलिए ज्ञान और कर्म का योग होना ही चाहिए। इसके बिना जीवन ही न चल पायेगा। ज्ञान और कर्म की तालीम के बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता। अशान्तिमय साधनों के प्रति देश में प्रीति रही, तो नुकसान होगा। हमें अपने देश की कोई भी समस्या हल करनी हो तो शान्ति और प्रेम के सिवा कभी दूसरा रास्ता न लेना चाहिए। तभी देश की प्रगति और उत्थान होगा। इसमें कोई शक नहीं कि सिर्फ पुरुषों का विकास हो और स्त्रियों का न हो तो देश लँगड़ा रहेगा। हिन्दुस्तान में छूत-अछूत भेद रहे, तो देश के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। हर मनुष्य को भारतीयता के नाते काम करना सीखना

होगा। हम सबको अपने जीवन की योजना सत्य और अहिंसा पर ही बनानी होगी। यही सब महात्मा गांधी ने हमें उपदेश दिया था।

कोयम्बतूर

२.१०.१९५६

: ९ :

गांधी : एक नव-विचार

नये विचार का अर्थ

हमें कोई नया विचार मिलता है तो क्या होता है, इस पर सोचें। वैसे जीवन तो वही होता है मानव-जीवन-इन्द्रिय-प्रधान, देह-प्रधान, वासना-मधान, भावना-प्रधान ! पर इन सबसे परे भी एक चीज है, जो नित-नया रूप लेकर मानव-जीवन को छूती है, उसमें प्रवेश करती है, उसके चारों ओर फैलती है और उसमें परिवर्तन लाती है। उसी को 'विचार' कहते हैं। इसमें कुछ व्यक्ति निमित्त-मात्र बनते हैं, जिनसे उस विचार का उद्गम तो नहीं, प्रथम प्रकाशन होता है। विचारों का उद्गम तो मानव के सामान्य मानस में विशिष्ट परिस्थिति के कारण होता है और उसका प्रथम प्रकाशन होता है किसी व्यक्ति द्वारा। नये विचार का प्रकाशन होने पर पुरानी कोई भी चीज अपने पूर्वरूप में नहीं भाती । वही खाना, वही पीना, वही भाषा, वही व्यवहार और वे ही शब्द होने पर भी उनके पुराने अर्थों की छटा कायम नहीं रहती।

जैसा 'दया' शब्द ही लीजिये ! यह बहुत अच्छा और ऊँचा शब्द है। तुलसीदासजी ने 'दया' को 'धर्म का मूल' बताया है। नि:सन्देह दया की बुनियाद पर ही मनुष्य का सामाजिक जीवन खड़ा हो सकता है। फिर भी पहले से दया का जो अर्थ होता आया, वह अब नव-विचार के बाद मान्य नहीं होता। इसी तरह कोई भी पुराना शब्द, जो मूल्यवान् अर्थ प्रकाशित करता था या करता हो, नव-विचार के बाद वैसा का वैसा नहीं जँचता। जहाँ पुराने शब्द ही नहीं, वहाँ उन शब्दों के अर्थ भी जँचते हैं और उन्हीं में कुछ सुधार की आवश्यकता अनुभव होती है। वहाँ नया विचार नहीं है। सुधार के रूप में कुछ फर्क कर लेना दूसरी बात है और नया विचार दूसरी बात।

'गांधी-परिवार' के लोगों को यह विशेष रूप से समझ लेने की जरूरत है कि नया विचार पुराने किसी भी पवित्र शब्द को उसकी पवित्रता मान्य करते हुए भी वैसा ही ग्रहण नहीं करता ।

इतना परिवर्तन लानेवाला हमें एक नया विचार मिला है, ऐसा जब भास होगा, तभी हम उसके पात्र सिद्ध होंगे।

प्रेम-धर्म का विचार-विकास

‘हम सब पर प्रेम करें और सब हम पर प्रेम करें’, ‘मित्र की दृष्टि से हम दुनिया को देखें और उसी दृष्टि से ही दुनिया हमें देखे’ ऐसे वाक्य वेद में आते हैं। वेद बहुत पुराना ग्रन्थ माना जाता है, इसलिए मैंने उसका नाम लिया। यह प्रेम का विचार है। इसकी महिमा सभी धर्मों ने गायी है। हम और दुनिया एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखें। हम प्रेम करेंगे तो दुनिया हम पर प्रेम करेगी, ऐसी यहाँ अपेक्षा है। दुनिया अगर हम पर प्रेम नहीं करती तो हमें क्या करना चाहिए, इसका निर्देश इसमें नहीं है। दुनिया की तरफ हम प्रेम की दृष्टि से देखें, ऐसा जिसे सूझा, उसे एक नव-विचार के तौर पर सूझा। तभी जिसे ‘धर्म’ कहते हैं, उसका आरम्भ हुआ। उससे पहले ‘धर्म’ नाम की चीज ही नहीं थी।

विचार का विकास हुआ। एक व्यक्ति आया-भगवान् बुद्ध। उन्होंने कहा: ‘वैर से वैर शान्त नहीं होता। अक्रोध से क्रोध को और प्रेम से वैर को जीतो।’ इससे सारा-का-सारा पुराना चिन्तन-चित्र ही बदल गया। उनके बाद एक और व्यक्ति आया ईसा मसीह। उन्होंने कहा : ‘दुश्मन पर प्यार करो।’ बहुत-बहुत बदल हो गया। ‘दुश्मन के साथ द्वेष न करो’ या ‘दुश्मन को प्रेम से जीतो’ ऐसा न कहकर यह ऐसा कहने वाला निकला कि ‘दुश्मन पर प्यार करो ।’

‘दुश्मन पर प्यार करो’ इसे ईसाई लोग उत्तम व्यक्ति के लिए उत्तम धर्म के तौर पर मानते हैं। वे कहते है कि सामान्य मानव के लिए सामान्य धर्म के तौर पर यह आदेश नहीं है। एक व्यक्ति ‘परफेक्ट’ हो सकता है। उसे राह बता दी कि दुश्मन पर प्यार करो। यह ठीक है, लेकिन समाज के लिए क्या ? जब समाज पूर्ण अवस्था में आयेगा, तब समाज के लिए भी यही चीज लागू होगी। लेकिन तब तक प्राप्त परिस्थिति में क्या करना होगा, इसका निर्देश यहाँ भी नहीं।

गांधीजी का प्रेम-धर्म सामूहिक

तब आये गांधीजी ! वे पुराने समाज में ऐसे ही पैदा हुए, जैसे दूध में मक्खन । गांधीजी जिस परिस्थिति में आये, उस समय भारतवर्ष निःशस्त्र था। यह सारी दुनिया के इतिहास में एक अद्वितीय घटना थी। वैसे अवसर पर गांधीजी ने जो आदेश दिया, वह अत्यन्त स्पष्ट होते हुए भी अस्पष्ट हो गया। उन्होंने कहा : ‘दुश्मन पर प्यार करो, यह बात केवल व्यक्तिगत क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। आप पर सामूहिक हमला होता हो, तब भी यही बात लागू होनी चाहिए।’ ‘दुश्मन के समूह से भी हमें प्रेम करना है’— गांधीजी ऐसा दावा करते थे। हम सब लोग उनके पीछे तोताराम की तरह बोलते थे। कभी न बोलते, तब भी उनके पीछे चलने का प्रयत्न करते थे। वे कहते कि ‘मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह भारत के ही प्रेम से प्रेरित नहीं, इंग्लैण्ड के प्रेम से भी प्रेरित है।’ उन्होंने सत्याग्रह आदि जो कुछ किया, वह सब प्रेम से प्रेरित होकर ही किया। हम उनका वैसा प्रेम देखते भी थे। यह हिन्दी मनुष्य है या अहिन्दी, ऐसा भाव उनके मन में नहीं था। हमने उनके साथ रहकर देखा है कि वे सब लोगों के साथ बिल्कुल ऐसा व्यवहार करते, जैसे अपने परिवार के किसी व्यक्ति के साथ किया जाता है।

नये विचार के अनुकूल चिन्तन हो

हमें गांधीजी के इस नये विचार के योग्य बनना है। खादी, ग्रामोद्योग, नयी तालीम, अछूतोद्धार आदि जो भी रचनात्मक कार्य हों, उन सबका परिणाम यह होना चाहिए कि इस नव-विचार को फैलाने में मदद मिले। यदि हम यह मूल वस्तु छोड़ देते हैं, तो फिर खादी-ग्रामोद्योग आदि कार्य केवल आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित रह जायेंगे। छूत-अछूत की बात हो, शादी की उम्र बढ़ाने की बात हो, तो वह सब समाज-सुधार के लिए जरूरी है। आर्थिक स्तर भी ऊँचा करने की जरूरत है। किन्तु जब हम उसी स्तर पर आ जाते हैं, तो हम हारनेवाले हैं ! अण्णासाहब का एक लेख छपा है कि हम बिजली को नहीं टाल सकते, उसका उपयोग करना चाहिए। इस विषय में अभी हम लोगों में चर्चा चल ही रही है। आज बिजली का सवाल है। कल अणुशक्ति का सवाल

आयेगा। अणुशक्ति काफी अच्छी तरह विकेन्द्रित हो सकती है। उसे आर्थिक कसौटी पर कसकर ही हमें निर्णय करना है। तो फिर आर्थिक नियमों के अनुसार आपको सारा बदलना होगा। आर्थिक नियम देश, काल, परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। कुछ नियम ऐसे भी हैं, जो नहीं बदलते। उन सब नियमों को मान्य कर आपको चलना होगा। पर हर बात में यदि आप यही कसौटी लगायेंगे, तो हमारे इस नव-विचार के लिए बिजली का प्रयोग किस तरह अनुकूल होगा, किस तरह प्रतिकूल होगा आदि सारी बातें ध्यान में आ जायेंगी। आर्थिक दृष्टि से भला-बुरा दोनों ध्यान में आने से आर्थिक संयोजन में ठीक दिशा मिलेगी और उससे नये विचार को अमल में लाने की बात भी सूझेगी।

गांधीजी के त्रिविधि आदेश

गांधीजी एक विचार है, व्यक्ति नहीं। यदि हम यह नहीं समझते तो गांधीजी पर बहुत अन्याय करते हैं। उनके विचारों को उनके शब्दों और कृतियों से सीमित कर देंगे, तो हम उनके प्रति अन्याय करेंगे। उन्होंने स्पष्ट कह रखा है:

१. 'मेरे पुराने शब्दों से मेरे आगे का शब्द प्रमाण समझो । पुराने और नये दोनों में कहीं विरोध आता हो, तो पुराने शब्द छोड़ दो।

२. मेरे शब्दों के साथ मेरी कृति का विरोध आये, तो मेरी कृति को गौण समझो और शब्दों को प्रमाण समझो। और

३. अपने भाव मैं अपने शब्दों में पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर सका हूँ, इसलिए मेरे भाव समझ लो और शब्दों को गौण मानो।'

इस तरह उन्होंने त्रिविध आदेश दिया। अब इससे आगे कया कहने को बाकी रह गया ? अत: हमें गांधीजी के विचारों को उनके शब्दों और उनकी कृतियों से सीमित नहीं करना चाहिए। उसका भाव लेकर आगे बढ़ना चाहिए।

सर्वोदय का यह नव-विचार गांधी-विचार की प्रेरणा से ही मिला है। लेकिन उनकी कृतियों और शब्दों से परे है। हम इस विचार से प्रेरित हैं और इसके लिए जो भी कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं।

अरसीकेरे (मैसूर)

८.११.१९५७

: १० :

बापू का वात्सल्य

गांधीजी के निकटवर्ती हम सारे सेवक-जन उन्हें 'बापू' नाम से पुकारते थे। फिर सारे देश ने ही बापू के नाम से पुकारा, 'राष्ट्रपिता' भी कहा। हम जब कभी बापू के बारे में सोचते हैं, तो हमारा अनुभव यही कहता है कि वे पिता से भी बढ़कर माता थे। अपने देश की सभ्यता में एक वाक्य आया है : **सहस्त्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते।**–'सहस्त्र पिताओं से एक माता श्रेष्ठ है।' बापू में जैसे पितृत्व, वैसे ही मातृत्व भी प्रकट होता था। आज दस साल के बाद भी जब कभी उनका स्मरण करते हैं, तो उनके और सब गुणों के स्मरण से अधिक उनके वात्सल्य का स्मरण होता है। उनके इस वात्सल्य का अनुभव समीपवालों ने किया और दूरवालों ने भी किया। उसमें किसी प्रकार के भेद के लिए कोई स्थान नहीं।

प्रेम के लिए शहीद

'शत्रु पर भी प्रेम करो' ऐसी महापुरुषों की सीख है। दुनिया में ऐसे महापुरुष हुए, जिनका व्यवहार से कोई सम्पर्क ही नहीं रहा। वे शत्रु-मित्र से परे थे। किन्तु बापू में हमने ऐसे महापुरुष के दर्शन किये, जो किसी भी व्यवहारी मनुष्य से कम व्यवहारी या किसी संसारी मनुष्य से कम संसारी नहीं। फिर भी वे शत्रु पर मित्र के समान प्रेम रखते। उनका कोई शत्रु नहीं था। जिन्होंने उनका प्रेम उनके जीते जी कबूल नहीं किया, उन्हें उनकी मृत्यु के बाद कबूल करना पड़ा। वे प्रेम के लिए शहीद हुए।

हुबली (मैसूर राज्य)

३०.१.१९५८

: ११ :

स्वतन्त्र-विचारों की आवश्यकता

बापू के सान्निध्य में

बापू के जन्म-दिन के निमित्त कुछ बोलना पड़ता है, तो हमें बहुत मुश्किल होता है। १९१६ में मैं उनके पास पहुँचा तो २१ साल का लड़का था और वे स्थिर-निश्चित विचार लेकर आश्रम में बैठे थे। वैसे तो वे भारत भर घूमते और बीच-बीच में आश्रम में रह लेते। लेकिन उनके जीवन-विषयक विचार स्थिर हो गये थे। अवश्य ही तबसे आखिर तक उनके कुछ-न-कुछ विचार बदलते गये, स्थूल विचारों का विकास होता गया। फिर भी मूलभूत विचार जो गौतम बुद्ध से चला आ रहा था कि प्रेम से वैर को जीतो, अक्रोध से क्रोध को जीतो, सत्य से असत्य को जीतो, वह पक्का रहा। उस पर वे २० वर्ष तक प्रयोग कर चुके थे। बिल्कुल जवानी में, ३० साल की उम्र में उन्होंने सत्याग्रह की कल्पना की और तबसे आखिर तक, ३४ साल 'सत्याग्रही' का जीवन बिताया। तभी से मैं उनके पास रहा। एक जिज्ञासु बालक की वृत्ति लेकर उनके पास गया था।

लेकिन तब मैं भी अपने जीवन का कुछ निश्चय कर चुका था। घर छोड़ चुका था। उसके बाद उनके पास पहुँचा और तबसे आखिर तक उनके पास रहा। उनके पास यानी शारीरिक दृष्टि से नहीं, उनके विचारों के आश्रय में रहा। उसके बाद १५ साल और हो गये। उनके आश्रय में, उनके मार्गदर्शन में ही भारत-विचरण कर रहा हूँ, ऐसा मानता हूँ। इस तरह सन् १९१६ से आज तक मैं सतत उनके पास रहा, ऐसा कह सकता हूँ।

विचारों के स्थूलरूप बदलने ही होंगे

यह शरीर भी पुराना है। विज्ञान कहता है, सात साल के बाद शरीर में वही खून नहीं रहता, नया बनता है। हमारे लोग मानते थे कि बारह साल में शरीर बदलता है। इसीलिए बारह साल की तपश्चर्या रखी होगी। इस तरह मेरे तो ४६ साल हो गये। इतने साल जो विचार उन्होंने सिखाये,

उनके निरन्तर चिन्तन, मनन, प्रयोग, आचरण में इतना समय लगा। उस हालत में उस विषय में व्यक्तिगत तौर पर मैं अपने लिए अभिप्राय नहीं दे सकता और जैसे अपने लिए नहीं, वैसे दूसरों के लिए भी नहीं दे सकता।

फिर भी इन पन्द्रह सालों में दुनिया में फर्क हुआ है। विज्ञान बढ़ा, भारत में आजादी आयी और लोकसत्तात्मक राज्य की स्थापना हुई। स्वतन्त्रता, लोकसत्ता और विज्ञान की प्रगति, ये तीन चीजें भारत में गत पन्द्रह वर्षों में आयीं। उस प्रकाश में विचारों का स्थूल आकार बदलता चला जा रहा है। वह यहाँ तक गहरा जाता है कि कुछ विचार भी बदलते हैं। आज हम ऐसी हालत में हैं कि गांधीजी ने जो दिया और कहा, उसके बिल्कुल अक्षर-अक्षर के साथ चिपके रहेंगे तो हमारी प्रगति नहीं होगी। अपने जीवन में वे भी हमेशा विचार बदलते गये। उनका बाहर का रूप बदलता गया। परिस्थिति ध्यान में लेकर तदनुरूप वे उनको बदल लेते थे। फिर भी उन्होंने अपने मूलभूत विचार को नहीं छोड़ा। हमें भी यही करना चाहिए। महापुरुषों के साथ रहनेवाले मनुष्य को यह हमेशा मुश्किल होता है, क्योंकि वे अक्षरार्थ को छोड़ना नहीं चाहते। बापू होते तो कया कहते, क्या करते, ऐसा सोचते हैं। मानते हैं कि मार्गदर्शक की राह पर चलना चाहिए। बहुत सारे अनुयायियों का यही हाल होता है परिणामस्वरूप प्रगति न कुण्ठित हो जाती है। अतः यह ठीक नहीं और स्वयं बापू की मान्यता के अनुरूप भी नहीं।

आश्रम कार्यकर्ताओं के विद्युत-केन्द्र बनें

बापू ने कभी किसी को अपना अनुयायी नहीं बनाया। मुझे भी स्वतन्त्र विचारों की आदत थी, बावजूद इसके कि मुझ पर उनके विचारों का पूर्ण प्रभाव रहा। यहाँ तक कि वे उनके नहीं, मेरे विचार बन गये। फिर भी वेद के समय से लेकर आज तक दुनिया में जो अनेक विचार-प्रवाह चले, उनका परिचय और प्रभाव भी मुझ पर है। विज्ञान के बारे में मेरा अपना चिन्तन हैं। मैं तटस्थ होकर सोचता और समझता हूँ। इस दृष्टि से स्पष्ट है कि बापू ने जिस प्रकार के आश्रम बनाये, वे अब नहीं चलेंगे। स्वतन्त्रता के पहले आश्रमों के साथ वहाँ ग्रामोद्योग, खादी, चमड़ा, गोरक्षा आदि-

आदि के प्रयोग भी चलते। इस प्रकार अनेक कार्यों का सम्मेलन आश्रमों में बन पड़ता। उनमें तालीम, राजनीति भी आती और अध्यात्म भी आता । सब चीजें एकत्र जुट जातीं। कार्यकर्ता भी इकट्ठा आते !

पर अब जो परिस्थिति में फर्क हुआ है, उसके कारण हमें समझना चाहिए कि यह हमारे लिए स्थिर बैठने का समय नहीं। हमें एक-एक विचार लेकर घर-घर, गाँव-गाँव पहुँचना होगा और उन विचारों को लोकजीवन की कसौटी पर कसना होगा। यह हमें करना ही होगा। हमारी यह साधना जितनी अधिक सध सके, उतनी होनी ही चाहिए। हम आश्रम इसलिए चलायें कि गाँव-गाँव में काम करनेवालों को वे एक विद्युत्-शक्ति प्रदान करें। जिन विचारों पर कार्य चलता है, उनका वहाँ अध्ययन हो। कई कार्यकर्ता इन आश्रमों में आते रहें और विचारों का अध्ययन कर सेवा-कार्य के लिए जायें। इस तरह अब आश्रम विद्युत्-शक्ति प्रदान करते रहें और नये विचारों की प्रयोगशाला बनें।

व्रतों की कसौटी सामाजिक क्रान्ति

इस सिलसिले में तत्काल वही चीज ध्यान में आती है, जो बापू ने की। उन्होंने पचास उद्योग खड़े किये, लेकिन उन्हें अहिंसा, सत्य आदि व्रतों के आधार पर खड़ा किया। ये व्रत नये नहीं, पुराने ही थे। बुद्ध, महावीर, पतञ्जलि ईसा—लगभग प्रत्येक धर्मगुरु ने इन्हें बताया। लेकिन वे चित्तशुद्धि के लिए कहे गये। चित्तशुद्धि, एकान्त, ध्यान और यम-नियम आदि क्रियाओं को हमारे पूर्वजों ने जितनी मान्यता दी, उतनी बापू भी मानते थे। लेकिन इसके अलावा बापू ने यह सिखाया कि समाज-सेवा और लोकक्रान्ति के लिए भी इन सिद्धान्तों की आवश्यकता है और इन पर निष्ठा द्वारा ही लोकक्रान्ति और सेवा का काम हो सकेगा।

इसके पहले जो समाज में क्रान्ति का काम करते, वे यह नहीं मानते थे। वे परिस्थिति के अनुसार व्यवहार करते। यहाँ तक मानते कि सिद्धान्तों में जकड़ जाना ठीक नहीं। गांधी ने यह

सिखाया कि अन्तःसाधना और चित्तशुद्धि के लिए जितनी इनकी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता सामाजिक क्रान्ति के लिए भी है। बल्कि उसकी कसौटी इसी पर है। हम मानते हैं कि निर्वैर होना आवश्यक है। लेकिन इसकी कसौटी घर में नहीं होती। जब समाज का काम लेकर समाज में जाते हैं, तब होती है। इसलिए चित्तशुद्धि और साधना की कसौटी के तौर पर वह चीज अवश्य उठा लेनी चाहिए।

आज आश्रम-जीवन यान्त्रिक

लेकिन उनके बाद जो आश्रम बने, उनमें यह चीज एक कोने में रह गयी । व्रतों का उच्चारण तो होता है, लेकिन वह यान्त्रिक है। लोग व्रत बोलते जाते हैं, लेकिन उनकी ओर खास ध्यान नहीं होता । ग्रामोद्योग चलाते हैं, जो आज वास्तव में सरकारी क्षेत्र में आते हैं। उस जमाने में सरकार अपनी नहीं थी, तो इस काम को हमें करना पड़ता था। उन उद्योगों का विकास करना पड़ता था। शरीर-श्रम और स्वावलम्बन के तौर पर उद्योग चलाना ठीक है। लेकिन अपनी सरकार है तो ग्रामोद्योग का क्षेत्र उसका हो गया है। फिर भी आज आश्रमों में वही किया जाता है और बुनियादी आध्यात्मिक आश्रम-प्रतिष्ठाएँ कोने में रख दी जाती हैं। उनके बारे में आश्रमबवासी उदासीन रहते हैं, सावधान नहीं रहते और न नव-विचारों का चिन्तन-मनन ही करते हैं। इस तरह जिससे क्रान्ति होती है, वह मुख्य वस्तु वहाँ नहीं रही। आज के आश्रमों में ये कुछ खामियाँ आ गयी हैं। ये चीजें, ये विचार आश्रमों में न रहें, इसलिए अध्ययन की आवश्यकता है, यह भूलना नहीं चाहिए।

सहूलियतों से विचार-कुण्ठा

हमने बहुत बार कहा है कि आश्रमों में स्फूर्ति कम हो गयी है। स्फूर्ति कम हो गयी है, इसका कारण वहाँ आपका जीवन सुव्यवस्थित है। उसका भी कारण यह है कि. जो सरकारी पैसा आपके पास आता है, उसका वहाँ स्वागत होता है। सुव्यवस्थित जीवन अच्छा माना जाता है। इसलिए उन विचारों का चिन्तन नहीं होता। विचारों का चिन्तन होता, तो हम दारिद्र्य को

स्वेच्छा से, विचारपूर्वक अपनाते। हम मानते हैं कि कुल सहूलियतें हमारी मारक हैं। सहूलियतों से विचार कुण्ठित होता है, ऐसा लगना चाहिए; पर वह नहीं लगता।

शंकराचार्य का आदर्श अपरिग्रह

मैं मद्रास गया था, तो वहाँ कामकोटि-शंकराचार्य से मिलने गया। जो शंकराचार्य होते हैं, वे संसार छोड़कर गद्दी पर बैठते हैं। लेकिन इन्होंने गद्दी से संन्यास ले लिया और एक छोटे से झोपड़े में बैठे थे। वहाँ दो चटाइयाँ बिछी थीं, एक मेरे लिए और एक उनके लिए। वे पूर्ण अपरिग्रह में रहते थे। आज १३०० साल के बाद भी उन्हें वैभव मिल सकता है, लेकिन वे अपरिग्रह में रहते थे। उनमें ज्ञान तथा अभ्यास भी देखा। उनके सम्प्रदाय में आज भी दो गुण दीखते हैं—अपरिग्रह एवं संयम-सादगी का महत्त्व और ज्ञानाभ्यास। हमारे यहाँ इन्हीं दो चीजों की कमी है। उद्योग चलाते हैं तो मानव के साथ ताल्लुक रहता है। इसमें हमारी विशेषता है, यह रहना ही चाहिए। केवल निवृत्तिपरायण रहें, तो मूल विचार भूल जायेंगे। इसलिए प्रवृत्ति चाहिए ही। लेकिन वह निवृत्ति के अंकुश में रहनी चाहिए। उसके लिए त्याग, संयम और अध्ययन की आवश्यकता होती है। यह चीज ध्यान में आनी चाहिए।

विज्ञान के साथ ताल-मेल साधें

मैं मानता हूँ कि गांधीजी ने विचार दिया है, उसमें पन्द्रह साल के बाद जो फर्क करना चाहिए, करके विज्ञान के साथ मेल-जोल करना चाहिए। उसे अध्यात्म का उचित मार्गदर्शन मिलना चाहिए। आज अध्यात्म की बहुत आवश्यकता है। विज्ञान आ गया है तो अध्यात्म को जागृत होना, सावधान होना ही पड़ेगा। हमें ढंग से आध्यात्मिक दृष्टि रखकर जीवन में विज्ञान को सुव्यवस्थित स्थान देना पड़ेगा, तभी दुनिया से गरीबी मिटेगी ।

गंगापुर (प. बंगाल)

२.१०. १९६२

: १२ :

गांधीजी की अपूर्व शिक्षाएँ

मानव-जीवन की प्रतिष्ठा के लिए पिछले दिनों जितने आध्यात्मिक चिन्तन हुए, उन सबका सार हमारे पूर्वजों ने मूलभूत पाँच व्रतों में रख दिया है। वे पाँच व्रत जैन, बौद्ध, हिन्दू और वैदिक सभी ने मान्य किये। यद्यपि बौद्धों ने उन्हें उन्हीं नामों से नहीं माना, पर 'पंचशील' के तौर पर उन्हें मान ही लिया। सारांश, जिन्हें हम पंचमहाव्रत कहते थे, और जिनको पतंजलि के योग-शास्त्र में यम, नियम आदि नाम दिये गये हैं, वे ही सिद्धान्त गांधीजी ने हमारे सामने रखे। लेकिन उनमें क्या विशेषता थी, इस पर थोड़ा विचार करें।

दुनिया की दो भिन्न जमातें

अब तक सेवा करनेवाली भिन्न-भिन्न जमातें समाज की तरह-तरह की सेवा करती रहीं और आज भी कर रही हैं। माना जाता था कि सेवा के लिए कुछ गुण होने चाहिए। फिर भी आज तक किसी ने यह नहीं माना कि देश-सेवा के लिए सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह की जरूरत है। इसके विपरीत जिन लोगों ने इन चीजों को व्यक्तिगत क्षेत्र में, व्यक्तिगत विकास के क्षेत्र में, ध्यानयोग के क्षेत्र में आवश्यक माना, उन्होंने सेवा का नाम तक नहीं लिया, मानव-समाज की रचना की बात ही नहीं कही। उन्होंने सामाजिक क्रान्ति करने का दावा नहीं किया। जिन्होंने माना कि ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है, उन्होंने उसका प्रयोग और पालन भी किया। कुछ लोगों ने तो बहुत अच्छी तरह प्रयोग किया। व्यक्तिगत जीवन की प्रयोगशाला में इन गुणों के जो प्रयोग किये गये, उनका भी उपयोग हुआ। फिर भी सामाजिक क्षेत्र में उनके विनियोग की बात किसी ने नहीं मानी। समाज-सेवकों ने इन व्रतों का नाम ही नहीं लिया और जिन्होंने लिया भी, उन्होंने लोक-क्रान्ति या समाज को आकार देने की बात नहीं कही। इस तरह दो जमातें बिल्कुल अलग-सी थीं। सारांश, आज तक का मानव-इतिहास एक विच्छिन्न व्यक्तित्व (स्प्लिट

पर्सनालिटी) जैसा है। व्यक्तिगत शुद्धि के लिए एक बात रखी गयी और सामाजिक शुद्धि के लिए दूसरी बात। इस प्रकार दोनों बातें चलीं।

कुछ लोग, जिनमें विच्छिन्न व्यक्तित्व नहीं था, इस झमेले में पड़े ही नहीं। वे कहते कि हमें समाज की सेवा करनी है, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि से कोई वास्ता नहीं। ऐसा मानना उनके लिए, उनके लिहाज से विच्छिन्न व्यक्तित्व नहीं था। उनके लिए वह एक पूरी बात ही थी। फिर भी वह पूरी शून्य थी। उसमें कोई शक्ति नहीं थी। वे केवल एक अंग ही देखते थे, दूसरे अंग को जानते ही नहीं थे। इसलिए उनके प्रयत्नों का फल शून्य-सा हुआ।

इन लोगों से भिन्न कुछ लोग ऐसे थे, जो समाज-सेवा और समाज को आकार देने की बात जानते ही न थे। किन्तु व्यक्तिगत क्षेत्र में ध्यान, चिन्तन, जप, तप आदि का महत्त्व मानते और निष्ठापूर्वक उनका पालन करते थे। उनका भी विच्छिन्न व्यक्तित्व नहीं था, वह एकांगी अवश्य था। फिर भी उन्होंने जो प्रयत्न किये, उनके परिणाम शून्यरूप में तो नहीं, बीजरूप में आये, अव्यक्त आये।

किन्तु जो पक्ष समाज को आकार देने में लगा था, उसने केवल इधर-उधर ऊधम मचाकर अपने-अपने जमाने में खून ही कर डाला। क्षणभर यही मालूम होता था कि परमेश्वर ही लीला कर रहा है। नेपोलियन बोनापार्ट को अब कौन पूछता है ? लेकिन जब वह प्रकट हुआ, तब तो उसका समाज पर धूमकेतु-सा प्रभाव रहा। फिर भी अन्ततः उसका परिणाम शून्य-सा, बेकार-सा हो गया। यह ठीक है कि उससे समाज को कुछ बोध मिलता और इस दृष्टि से वह बेकार नहीं। किन्तु दूसरे व्रतनिष्ठ पक्ष से समाज-सेवा नहीं बनी, तो भी उसने अव्यक्त में कोई चीज पैदा कर ही दी और दुनिया पर उसका कुछ अव्यक्त प्रभाव होकर रहा।

काम की बुनियाद आध्यात्मिक

गांधीजी ने समाज-सेवा, राजनीति, रचनात्मक कार्यक्रम, लोकसुधार, लोकशिक्षा आदि अनेक बाह्य कार्यों के साथ सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि की भी आवश्यकता बतलाना शुरू

किया। उस समय गोरक्षण के काम का सवाल आया, तो उन्होंने कहा कि 'गोरक्षा के काम के लिए आदर्श ब्रह्मचारी चाहिए।' आज तक किसी ने ऐसा नहीं कहा था। हमें समझना चाहिए कि उन्होंने बड़ी भारी पूँजी दी है, जिसके आधार पर हमारा काम चलना चाहिए। रचनात्मक कार्यकर्ताओं के बीच दूरीभाव या एक-दूसरे के प्रति प्रेम की कमी भी नहीं होनी चाहिए। अन्य जमातों में ऐसा होता हो, तो मैं कुछ समझ भी सकता हूँ, लेकिन हमारी इस जमात में यह होना हरगिज नहीं समझ पाता। हमें एकत्र काम करने में कभी मुश्किल होनी ही नहीं चाहिए। यदि होती है, तो हम अपने काम की आध्यात्मिक बुनियाद ही खो बैठते हैं। फिर जैसा पुराना चरखा नहीं टिका, वैसे हमारा काम भी नहीं टिकेगा।

राम ही देश की दौलत

हमें इस पर ध्यान देना चाहिए। हमारी भक्ति और प्रार्थना बिल्कुल 'रुटीन' हो गयी है। सुबह-शाम प्रार्थना कर लेते हैं और उसका रिवाज-सा पड़ गया है। सदाचार के रूप में रिवाज अच्छा है, पर सदाचार एक बात है और प्रार्थना दूसरी बात। मैं बहुतों को यह कहते सुनता हूँ कि 'हमारी ईश्वर पर श्रद्धा नहीं है।' ऐसे सज्जन जब मुझसे मिलते हैं, तो मैं उनसे कहता हूँ कि 'भाई, आपको ईश्वर पर श्रद्धा नहीं और आपको ईश्वर का स्मरण नहीं होता, तो इसमें दुनिया का कुछ नहीं बिगड़ता। लेकिन ईश्वर को आपका स्मरण न रहे, उसकी हम-आप पर श्रद्धा न रहे, तब तो सारा काम ही बिगड़ जायेगा।' हमें सोचना चाहिए कि बापू आखिर में कौन-सा नाम लेकर गये ? अन्तिम क्षण में 'रामनाम' जबान पर लाना क्या कोई यान्त्रिक बात है ? तुलसीदास ने लिखा है कि 'जन्म-जन्म यत्न करनेवालों को भी अन्त में राम का स्मरण नहीं होता। यह राम क्या है और आखिर हमारे अपने देश की कौन-सी दौलत है, इस पर हम जरा सोचें।

भक्ति और आत्मज्ञान

गांधीजी ने यह पहचान लिया था। उरुळीकांचन ही प्राकृतिक चिकित्सा की जब बात निकली, तब उन्होंने एक-एक को बुलाकर कहा कि 'प्राकृतिक चिकित्सा का काम करना चाहते

हो तो आजन्म ब्रह्मचर्य रखो, तभी वह कर पाओगे।' सुननेवाले यह सुनकर दंग रह गये। प्राकृतिक चिकित्सा का सम्बन्ध मिट्टी, हवा और एनिमा से हो सकता है, गांधीजी ने तो उसका सम्बन्ध ब्रह्मचर्य से भी जोड़ दिया। अब हमें यह न सूझे और हम ऊपर-ऊपर की बातें करते रहें, तो उससे अपने देश का काम नहीं बनेगा । इसीलिए हमें अपने देश की भक्ति, आत्मज्ञान आदि सब चीजों पर ध्यान देना चाहिए। ये हमारे जीवन की बुनियादी चीजें हैं। इनके लिए शास्त्र-पारंगतता नहीं, बल्कि श्रद्धा की आवश्यकता है। हमारे हृदय का मुख्य हिस्सा भक्तिभाव से भरा हो। यदि सेवा के समय हमें यह अनुभूति न हो कि हम मनुष्यरूप परमेश्वर की ही सेवा कर रहे हैं, तो कम-से-कम ऐसी श्रद्धा से निरन्तर वैसा मानकर सेवा करनी चाहिए। हम केवल मनुष्य की सेवा नहीं कर रहे हैं, बल्कि मनुष्यरूप में ही नयी उपासना कर रहे हैं।

मन से ऊपर उठें

पहले के जमाने में लोगों का ध्यान विषयासक्ति से छुड़ाकर परमेश्वर की ओर लगाने के लिए मूर्ति की आवश्यकता पड़ती थी। उस जमाने में जमीन बहुत थी और जनसंख्या कम। जो सवाल हमारे सामने आज पेश हैं, वे उस समय नहीं थे। लोगों को फुरसत थी, इसीलिए वे विषय-वासना में पड़ते थे। अतः मूर्ति के ध्यान की बात लाकर समाज को बचाया गया। लेकिन आज मानव के सामने कई सवाल पेश हैं। इसलिए आज यदि हम उन सवालों और समाज को भी टालकर किसी मूर्ति की पूजा करते बैठें, तो जीवन में विसंगति आ जायेगी। इसीलिए आज की भक्ति मानव-सेवा के लिए विवश कर रही है और वह आध्यात्मिक दृष्टि से हो, यह बहुत जरूरी है। इसलिए हमें मन के स्तर से ऊपर उठना होगा। हमने कई बार कहा है कि थर्मामीटर को खुद बुखार नहीं रहता, इसीलिए वह सबका बुखार ठीक से नाप पाता है। इसी तरह लोगों के दुःख और विकारों को ठीक पहचानने के लिए यह आवश्यक है कि हम दुखों और विकारों से परे बनें और उन्हें समझायें।

ये सारी बातें बहुत ऊँची हैं, ऐसा समझकर उन्हें छोड़ना नहीं चाहिए। बल्कि यह समझना चाहिए कि जिन सन्तों ने ये बातें अपने जीवन में उतारीं, उनके दावों से ऊँचे दावे हम कर रहे हैं। उन्होंने कभी यह दावा नहीं किया कि हम अपनी संगति से किसी का परिवर्तन करते हैं। वे केवल इतना ही कहते थे कि हम अपनी हृदय-शुद्धि कर लोगों के पास पहुँचेंगे और नम्रभाव से अपनी सेवा समर्पण करेंगे। सारी समाज-रचना बदलने और उस पर असर डालने और हृदय-परिवर्तन करने की बात वे नहीं कहते थे। लेकिन हम यह दावा करते हैं कि अपने जीवन-चिन्तन और रवैये से हम समाज का रूप बदल देंगे। इसलिए मन से ऊपर उठने की बात ऊँची नहीं, हमारे रोजमर्रे की चीज है, अपने इसी जीवन के काम की चीज है।

चालीसगाँव (महाराष्ट्र)

९.८.१९५८

: १३ :

मैंने बापू से जो सीखा... !

बापू कहते थे कि उनकी कुल जीवन-साधना, सत्याग्रह आदि काम परमेश्वर की खोज के लिए हैं। प्राय: ईश्वर की खोज करनेवाले एकान्त में ध्यान, धारणा आदि करने जाते हैं। पर बापू एकान्त में नहीं गये, लोगों के बीच ही काम करते रहे। यह ठीक है कि वे ध्यान, प्रार्थना के लिए पन्द्रह-बीस मिनट निकालते थे। लेकिन वे कहते :

"ध्यान तो हमारे काम में हर क्षण होना चाहिए और एकान्त जनता में काम करते-करते प्रतिक्षण मिलना चाहिए। एकान्त में हम जाते हैं, तो हमारा मन घूमता है। फिर वह कैसा एकान्त हुआ ? सच्चा एकान्त तो वह होगा, जहाँ हम मन से अलग हों। इसीलिए वे मन से अलग होकर जन-सेवा में सदैव एकान्त का अनुभव करते और कहते कि 'मेरा जीवन ईश्वर की खोज और दर्शन के लिए है।'

गुण-ग्रहण से ईश्वर-दर्शन

ईश्वर-दर्शन क्या है, यह समझना चाहिए। हिन्दुस्तान में ईश्वर के लिए बहुत भक्तिभाव है। चीनी लेखक लीन यु टांग ने तो लिखा है कि 'हिन्दुस्तान 'गॉड इण्टॉक्सिकेटेड लैंड' (ईश्वर से अभिभूत भूमि) है। बात सही है। लेकिन ईश्वर की खोज किस तरह होगी ? ईश्वर गुणमय है - सत्य, प्रेम, करुणा आदि मंगलमय गुण उसमें भरे हैं। इन सब गुणों की परिपूर्णता ही ईश्वर है। सामने जो-जो मनुष्य आते हैं, उनमें गुण-दर्शन होना चाहिए। यदि हमें किसी में दोषों का दर्शन होता है तो वह 'माया' का दर्शन है, ईश्वर का नहीं। किसी में गुण और दोष का दर्शन हुआ, तो माया और ईश्वर दोनों का थोड़ा-थोड़ा मिश्र दर्शन हुआ। वह भी स्वच्छ दर्शन नहीं गिना जायेगा। स्वच्छ दर्शन तो तब होगा, जब हरएक को देखकर गुण का ही दर्शन करें।

ईश्वर का एक-एक अंग एक-एक गुण के रूप में प्रकट है और दोष जो दीखते हैं, वे माया के ऊपर के छिलके हैं—जैसे बीज के ऊपर छिलका होता है। माया के उन आवरणों को भेद कर स्वच्छ-शुद्ध दर्शन होना चाहिए। अलग-अलग गुणों का दर्शन होना चाहिए। इस तरह ईश्वर का एक-एक अंश देखने को मिलेगा, तो उसके बाद उसका समग्र दर्शन भी होगा। अत: हमेशा गुण-ग्रहण, गुण-चर्चा और गुण-स्मरण करना चाहिए। दोष-ग्रहण, दोष-चर्चा और दोष-स्मरण कत्तई नहीं करना चाहिए। इसीलिए हमने कहा कि ‘अनिन्दा’ का व्रत लेना चाहिए।

किसी का दोष हमें दीखता है, तो वह हमारा ही दोष है, यह मानना चाहिए। उसकी निन्दा करना दूसरा दोष होगा और उसके पीछे उस दोष की चर्चा या निन्दा करना तीसरा दोष। इस तरह एक के बाद एक दोष का सम्पुट चढ़ता जायेगा, तो गुण-दर्शन होगा ही नहीं। फिर गुण-दर्शन नहीं होगा तो ईश्वर का दर्शन भी लुप्त हो जायेगा। इसलिए हमें अपने भी दोषों का दर्शन नहीं करना चाहिए। अपने गुणों का ही दर्शन करना होगा। इस तरह सर्वत्र गुण-स्तवन, गुण-दर्शन, गुण-वर्द्धन होना चाहिए। इसी को भगवान् के गुणों का स्तवन कहते हैं।

हम सत्य, प्रेम और करुणा कहते हैं। जहाँ-जहाँ हमें सत्य का अल्प दर्शन हुआ, वहाँ हमें ईश्वर का दर्शन हुआ। बालू के कण पड़े हैं, उनमें थोड़े शर्करा-कण भी पड़े हैं। चींटी उसमें से शर्करा-कण ही लेती है। इसी तरह सत्य का अल्प दर्शन ले लें। कहीं प्रेम का दर्शन हुआ, तो उसे ले लें। कहीं करुणा का दर्शन हुआ, तो वह ले लें। कहीं और कुछ दीखा, तो उसे ले लें। इस तरह हरएक का गुण-ग्रहण करते-करते हमारा हृदय गुण-भण्डार हो जायेगा। तब हमें भगवान् का परिपूर्ण दर्शन होगा।

इसीलिए बापू कहते थे कि मैं कोशिश में हूँ कि भगवान् का परिपूर्ण दर्शन हो। माया-कवच, दोषों का दर्शन न हो। आज हालत यह है कि गुणों का दर्शन नहीं होता, दोषों का ही होता है। दोष ही सामने आते हैं। वे होते ही हैं, ऐसा नहीं। जब तक मनुष्य के हृदय में प्रवेश नहीं होता, तब तक बुराई ही दीखती है, क्योंकि हेतु का पता कहाँ लगता है ? कानून में भी अपराधी को

संशय का लाभ दिया जाता है, जिसे 'बेनिफिट ऑफ डाउट' कहते हैं। जब तक हेतु का दर्शन नहीं होता, तब तक उसे अपराधी नहीं कह सकते। हम एक-एक मनुष्य के दोषों के परीक्षक होंगे, तो हमें दूसरा धन्धा ही नहीं रहेगा। हमारा हृदय सबके दोषों का संग्रह-स्थान होगा। उससे परमेश्वर का पूर्ण आच्छादन होता है, यानी माया के आच्छादन के कारण परमेश्वर का दर्शन नहीं हो पाता। इस तरह स्पष्ट है कि भक्ति के बिना परमेश्वर की खोज, उसका दर्शन नहीं हो सकता और गुण-दर्शन तथा गुण-विकास के बिना भक्ति नहीं हो सकती।

गुण-ग्रहण से गुण-विकास

सामनेवालों में जो गुण है, उसका दर्शन होना चाहिए। उसे स्वीकार करके अपने हृदय में स्थान देना चाहिए। इसका नाम है गुण-ग्रहण। फिर उस गुण का विकास करना चाहिए। हम सामनेवाले का गुण अपनी हृदय-भूमि में बोयें। खेत में किसान एक बीज बोता है, तो वह चौगुना होता है, सौ गुना होता है। वैसे ही अपनी मनोभूमि शुद्ध हो और उसमें सामनेवाले का गुण बो दें, तो वह शतगुणित होगा। इसी का नाम है गुण-विकास । प्रथम गुण-दर्शन, फिर गुण-ग्रहण और बाद में गुण-विकास—यह भक्ति की प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया से सर्वत्र छिपी परमेश्र की हस्ती का दर्शन होगा।

हमारा दान का, सेवा का, त्याग का, सत्याग्रह का कार्यक्रम सब-का-सब भगवान् की छिपी शक्ति के दर्शन के लिए है। सत्याग्रह में हम क्या करते हैं ? सुख-दुःख सहन करते हैं और उसमें जो अच्छा अंश है, वह बाहर निकालते हैं। सामने अच्छा अंश होना चाहिए न? अच्छा अंश न हो, तो वह कहाँ से लायेंगे ? सत्याग्रह में यह श्रद्धा होती है कि सामने अच्छा अंश है। यही है गुण-दर्शन।

इस गुण-दर्शन के आधार पर ही सत्याग्रह है। सामने जो व्यक्ति है, उसमें जो गुण है, वह प्रभावी हो, शक्तिशाली हो, ऐसी कोशिश करेंगे, तो दोष-निरसन होगा। उस गुण को प्रभावी करने

के लिए जो दुःख सहन करना पड़ता है, वह सत्याग्रही ही कर सकता है। सत्याग्रही में यही गुण है कि वह सामनेवाले में जो गुण है, उस पर श्रद्धा करता है। इसी श्रद्धा पर सत्याग्रह खड़ा है, इसी श्रद्धा पर दान का कार्यक्रम चलता है।

रामगंज (प. बंगाल)

१२.२.१९६१

: १४ :

मैंने जो ‘गांधी-विचार’ समझा !

हमें श्री प्यारलालजी की अद्भुत पुस्तक ‘लास्ट फेज’ में, जो उन्होंने १९५८ में प्रकाशित की है, यह चर्चा देखने को मिलती है: “उन दिनों स्वराज्य मिल गया था। किन्तु उसमें गांधीजी की आशाएँ उतनी सफल नहीं हुई थीं—‘न खादी-ग्रामोद्योग के बारे में, न शान्ति-स्थापना के बारे में और न अहिंसा के विचार में। यानी उनके जीवन के जो दो बड़े पहलू थे, उन दोनों में उनको असन्तोष रहा।”

गांधीजी चाहते थे कि उनके साथी कहलानेवाले एकत्र हों, अलग-अलग चलनेवाली सारी सेवाएँ एकत्र कर भारत में अहिंसक-शक्ति निर्माण करें और आजाद भारत को गलत रास्ते पर न जाने दें। इसलिए उन्होंने सेवाग्राम में एक सम्मेलन करने की सोची थी, पर वह कार्यान्वित होने से पूर्व ही वे चल बसे। उनकी अनुपस्थिति में बहुत सारे उनके निकटवर्ती साथी और सेवक सेवाग्राम में एकत्र हुए। उस समय हमें बोलने के लिए कहा गया। मैंने कहा :

“मैं यहाँ बहुत ज्यादा बोलना नहीं चाहता, क्योंकि हम एक-दूसरे को पहचानते भी नहीं हैं। हम सब मिले हैं तो आगे क्या करें, यही यहाँ सोचें। मैं भी सोचूँगा। आज तो अपना यह प्रथम परिचय हो रहा है। यहाँ जितने एकत्र हुए हैं, उन सबमें मैं सबसे ज्यादा अपरिचित हूँ। कारण जब तक गांधीजी थे, तब तक तो मैं एकान्त-साधना में ही रहता था। लगातार तीस वर्ष तक अध्ययन, अध्यापन, ग्रामीणों और आश्रमवासियों की सेवा, ध्यान-धारणा और भक्तियोग की साधना, ज्ञानचिन्तन आदि का ही मेरा कार्यक्रम चलता। इसीलिए बहुत-से लोगों से अपरिचित हूँ। अतएव आज मैं ज्यादा बोलना नहीं, सुनना ज्यादा चाहता हूँ।”

गांधी के बाद निराशा का वातावरण

सचमुच उन दिनों सिर्फ चन्द भाई जो वर्धा आते थे, कभी मुझसे मिलने चले आते। कभी बापू भी उन्हें मेरे पास भेज देते। उन्हीं से मैं परिचित था। बाकी बहुतों से अपरिचित ही था। ऐसी हालत में भी वहाँ मांग हुई कि 'हम शरणार्थियों की समस्या में मदद करें ।' किसी तरह उसे मान्य करके जाजूजी और जानकी बहन (जानकी देवी बजाज) को साथ ले मैं निकल पड़ा। इधर-उधर हिन्दुस्तान में घूमकर देखा, तो दीख पड़ा कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं में हद दर्जे की मायूसी छायी हुई है जिसे 'समग्र निराशा' कह सकते हैं। सब समझते थे कि अब तो अपना विचार समाप्त ही है, कुछ चलने-वलनेवाला नहीं। एक युग समाप्त हुआ, दूसरा शुरू हुआ। इस नये युग में अहिंसा का विचार कुछ खास नहीं चलेगा, पनप नहीं पायेगा।

मैं वापस पवनार लौटा। लौटने पर 'काञ्चन-मुक्ति' का प्रयोग शुरू कर दिया। निश्चय किया कि यह पूरा कर भारत की सेवा के लिए पैदल निकल पड़ूँगा। पर कब ? कह नहीं सकता। एक-डेढ़ साल तो वह प्रयोग मेरे लिए जरूरी ही था। नये युग के लिए भी जरूरी था। काञ्चन-मुक्ति के प्रयोग के बिना नये युग का आरम्भ नहीं हो सकता। बीच में सर्वोदय-सम्मेलन में जाना पड़ा। चाहता नहीं था, लेकिन जाना पड़ा। पर जब निकला, तो पैदल ही निकला। लोगों के मन में इसका कोई ख्याल नहीं था, इससे बहुतों के दिल को यह कुछ विचित्र-सा लगा। लेकिन निकट के लोगों ने सोचा कि शायद इसी में से कुछ मतलब की चीज निकल पड़े।

तबसे लगातार यह यात्रा जारी है और आज भी महात्मा गांधीजी की उपस्थिति में यहाँ बोल रहा हूँ। अन्तरात्मा साक्षी है कि जिस संकल्प से निकला हूँ, उस संकल्प की पूर्ति के सिवा दूसरा कोई विचार नहीं आता। जितना भी काम किया जा रहा है, उतना कुल-का-कुल उसी संकल्पपूर्ति के लिए किया जा रहा है। इस समस्त कार्यक्रम में मैं बापू को निरन्तर अपने साथ पाता हूँ।

गांधीजी आये और गये, पर हमारे चिन्तन का—राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक चिन्तन का स्तर सभी क्षेत्रों में वही पुराना रहा। आज भी सारा दारोमदार सेना, पुलिस, राजतन्त्र और सरकार पर ही माना जाये तो गांधीजी के आने से लाभ ही क्या हुआ ? यह नहीं कि सरकार की जिम्मेवारी हम न उठायें। वह तो उठानी ही चाहिए और हमने उठा ही ली, यह ठीक ही किया। किन्तु उतने से अहिंसा नहीं आयेगी।

करुणा साम्राज्ञी बने

आज विज्ञान के युग में बहुत बड़ी मांग यह है कि करुणा का स्त्रोत फूट निकले और अहिंसा एक दासी नहीं, साम्राज्ञी बने। दण्डशक्ति के राज्य में अहिंसा रहे, यह तो आज तक चला ही। राज्य दण्डशक्ति का ही रहा है, भले ही उसके रूप अलग-अलग हों। अभी ‘लोकतन्त्र’ का रूप आया, फिर भी राज्य दण्डशक्ति का ही है। अहिंसा पहले थी और आज भी हे लेकिन है वह दासी ही। मैं बहुत बार कहता रहता हूँ कि ‘युद्ध में सेना की सेवा करने के लिए जानेवालों में करुणा और दया दोनों है। किन्तु वह करुणा युद्ध को समाप्त नहीं कर सकती। युद्ध में रुचि पैदा कर सकती है। युद्ध का पाप घटाकर एक तरह से वह युद्ध को बल ही देती है।’ वह करुणा तो पहले भी थी और आज तक है। यदि वह भी न होती तो हम जानवर ही होते।

गांधीजी क्या चाहते थे ?

गांधीजी जो करुणा चाहते थे, वह यह नहीं। वे ऐसी करुणा चाहते थे, जो साम्राज्ञी हो, उसी के आधार पर मानव-समाज बने। वह बन सकता है और हम बना सकते हैं, ऐसा विश्वास मानव को हो। धीरे-धीरे दण्डशक्ति क्षीण हो जाय और आखिर उसका परिवर्तन दूसरे रूप में हो—करुणा-मूलक, साम्य पर आधृत, स्वतन्त्र लोकशक्ति के रूप में वह बढ़े। आगे एक जमाना आयेगा, जब कि करुणा साम्राज्ञी बनेगी । वह जल्दी आना ही चाहता है। यदि हम शीघ्र उसके योग्य नहीं बनते, तो आज ही नष्ट हो जाने की नौबत है। विज्ञान ने जो साधन पैदा किये हैं, उनके

साथ अहिंसा जुट जाय तो स्वर्ग उतर आयेगा। इसके विपरीत उनके साथ हिंसा जुड़ जाय तो मानव-जाति का विकास हो जायेगा। हम ऐसी गलत-फहमी में न रहें कि हम विज्ञान को नहीं चाहते। मेरा दावा है कि विज्ञान को अधिक-से-अधिक चाहने का मुझे हक है। दूसरे जो विज्ञान को चाहते हैं, नाहक चाहते हैं। सर्वोदय-सेवक का ही विज्ञान पर सच्चा हक है। विज्ञान पर अहिंसा का ही अधिकार है। इसलिए हम विज्ञान को खूब चाहते हैं।

हम पैदल यात्रा करते थे तो कुछ लोग शुरू-शुरू में कहा करते कि यह दकियानूसी विचार है। लेकिन समझने की चीज है कि इस युग में पदयात्रा ही टिकनेवाली है या हवाई जाहज टिकेंगे। बीच के सारे साधन धीरे-धीरे समाप्त हो जायेंगे। एक बाजू ग्राम-रचना होगी तो दूसरी बाजू विश्व-व्यवस्था। बीच के राष्ट्र, प्रान्त आदि नास्तिवत् हो जायेंगे। एक 'विश्व-संस्था' होगी तो दूसरी 'ग्राम-संस्था' । दोनों को जोड़नेवाले प्रान्त, जिले एक-एक करके कम होंगे, नाममात्र रहेंगे।

गाँव विश्व का प्रतिनिधि बने

वेद ने कहा है: **विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्**—इस ग्राम में स्वस्थ और परिपुष्ट विश्व का दर्शन हो। ग्राम का दर्शन हो, ऐसा नहीं कहा। भारत का दर्शन हो, ऐसा भी नहीं कहा। दुःखरहित, रोग-रहित, समग्र विश्व का दर्शन इस गाँव में हो, यही प्रार्थना इस वेदमन्त्र में की गई है। गाँव विश्वरूप हो, विश्व का प्रतिनिधि हो, इसीलिए हम इधर 'जय ग्रामदान' कहते हैं तो उधर 'जय-जगत्' । करुणामूलक साम्य की ऐसी समाज-रचना करने के लिए विज्ञान का बहुत उपयोग होगा। पदयात्रा भी इसमें एक वैज्ञानिक साधन समझी जायेगी, जो हमने शुरू की है।

समाज पर करुणा की सत्ता चले

विज्ञान के दूसरे भी साधन हैं, आणविक साधन। उनका उपयोग हम अहिंसा में करेंगे। यह आज के जमाने की आवश्यकता है। आज के जमाने की मांग ही है कि अहिंसा और विज्ञान जुड़ जायें, समाज पर अहिंसा और करुणा की सत्ता चले। उस बीच दण्ड की आवश्यकता रहेगी,

किन्तु साम्राज्ञी करुणा ही होगी। लाचारी से कहीं दण्ड रहा तो रह सकता है। आज हालत यह है कि राज्य दण्ड-शक्ति का है और उसमें करुणा और अहिंसा दासी के तौर पर हैं। शायद वे खत्म हो सकती हैं और उनके साथ-साथ मानव भी। इससे भिन्न करुणा का राज हो और उसमें दण्ड-शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जाय और करुणा ही करुणा दुनिया में रहे—ऐसा एक स्वप्न मैं देख रहा हूँ। मानता हूँ कि किसी विचार को किसी मनुष्य का नाम देना गलत है। फिर भी यदि इस विचार को नाम देना ही है तो मैं इसे 'गांधी-विचार' कहूँगा। मैं नाम देना नहीं चाहता, किन्तु आज उनकी स्मृति में बोल रहा हूँ, इसलिए यह कहता हूँ।

: १५ :

गांधीजी का सन्देश : 'साधन-साध्य-अद्वैत !'

[गांधी-शताब्दी के प्रसंग में अक्सर गांधी-भक्तों की ओर से कहा जाता है कि इस अवसर पर उनका सन्देश भारत के घर-घर में पहुँचाया जाय। भावना बहुत अच्छी है, पर आखिर गांधी का सन्देश क्या है, यह तो निश्चित होना ही चाहिए। यह वही कह सकता है जो उनसे सर्वांशत: एकरूप हो गया हो। सौभाग्य से हाल में पूज्य विनोबाजी के सान्निध्य में यही चर्चा छिड़ी तो उन्होंने अपनी अधिकृत प्रज्ञा से साधक-बाधक विचार कर तीन बातें 'गांधी-सन्देश' के नाम पर प्रस्तुत कीं : १. साध्य-साधन का अद्वैत, २. आध्यात्मिक साधना और समाज-सेवा का संगम ही कार्यकारी और ३. किसी भी साधन का सामूहिक अनुष्ठान। तीनों गांधीजी के अनन्य-उद्भावित सन्देश हैं और उनमें भी प्रथम सर्वथा बेजोड़ है। इन्हीं का घर-घर प्रचार होना चाहिए। इनमें से प्रथम सन्देश पर व्यापक प्रकाश डालते हुए पूज्य बाबा ने इस प्रवचन में प्रचार के माध्यम पर भी मुख्य मार्गदर्शन किया है। शेष दो बातें इस ग्रन्थ के उनके अन्य अनेक प्रवचनों में आ गयी हैं।–सं.]

मुझसे पूछा गया कि गांधीजी का सन्देश घर-घर कैसे पहुँचाया जाय? किन्तु इसे देखने के पहले मुख्य बात यह विचारणीय है कि गांधीजी का संदेश हम क्या समझे हैं, जिसे घर-घर पहुँचाना चाहते हैं ? गांधीजी ने अन्त में रामजी का नाम लिया था। उन्होंने कभी यह दावा नहीं किया कि 'मैं कोई नयी चीज लोगों के सामने रख रहा हूँ।' केवल इतना ही कहा कि 'चीज तो पुरानी है, लेकिन नये ढंग से रखी जा रही है और उस पर सामूहिक रीति से कैसे अमल हो, यह कहा जा रहा है।' अब यह जो नये ढंग से रखने की बात है, वह भी दिन-प्रतिदिन पुरानी पड़ती जायेगी। वाल्मीकि ने जो रामायण कही, वह पुरानी हो गयी, तो तुलसीदासजी ने नये ढंग से उसे कहा। हो सकता है कि चंद दिनों में वह भी पुरानी पड़ जाये और नये ढंग से समझाना पड़े। इसलिए स्पष्ट है कि गांधीजी ने जिस ढंग से समझाया, उससे भिन्न ढंग से आज समझाना पड़ सकता है।

गांधीजी ने व्यक्तिगत तौर पर धर्म के आचरण की बात कही, लेकिन वह पुरानी बात है। उनकी मुख्य बात है, सामूहिक तौर पर धर्म का आचरण कैसे किया जाय ? सत्य, प्रेम, करुणा ये सब शब्द तो पुराने हैं। गांधीजी के जो दो खास शब्द माने जाते हैं 'सत्याग्रह' और 'सर्वोदय', वे दोनों भी पुराने हैं। 'सर्वोदय' शब्द ठीक जैसा-का-तैसा जैन-शास्त्रों में मिलता है। वहाँ कहा गया है :

सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ।

हे भगवन् ! यह तेरा ही तीर्थ है, जिसमें सबका उदय होता है। सब आपत्तियों का अन्त होता है, पर उसका अपना अन्त नहीं होता।' ऐसी कई चीजें हैं, जो आपत्तियों से मुक्ति दिलाती हैं, लेकिन अन्त में उनकी भी समाप्ति हो जाती है। किन्तु सर्वोदय ऐसी चीज है, जो आपको आपत्तियों से मुक्ति दिलाती है, लेकिन उसकी अपनी समाप्ति कभी नहीं होती।

'सत्याग्रह' शब्द में भी 'सत्य' पुराना है और 'आग्रह' भी पुराना। गांधीजी ने केवल दोनों का समस्त पद बना दिया और वह भी बेढंगा ! कारण, तेलुगु भाषा में 'आग्रह' कोई अच्छी नहीं, बहुत खराब चीज मानी जाती है। वहाँ 'आग्रह' का अर्थ है 'गुस्सा' । यह अलग बात है कि अब 'सत्याग्रह' शब्द रूढ़ हो गया, तो तेलुगुवालों ने भी उसे हजम कर लिया। इस प्रकार भिन्न-भिन्न शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों में भारतीय भाषाओं में रूढ़ हैं। मलयालम् भाषा में 'मत्सर' एक अच्छी चीज है, जिसे हम बहुत खराब समझते हैं। 'चरखा-मत्सरम्' का मतलब है कि चरखे की काम्पीटीशन, होड। वे लोग कहते हैं, मत्सरम् अच्छी चीज है और वह करना चाहिए, लेकिन स्पर्धा खराब चीज है। स्पर्धा किसी के साथ नहीं करनी चाहिए। यह है हाल पुराने शब्दों का !

तो, 'सत्याग्रह' शब्द नया नहीं, पुराना ही है और उस शब्द में चूँकि गलत बात भी आयी है, इसलिए उसका भी असर हुआ है। शब्द का असर पड़ता ही है। पाणिनीय व्याकरण के महाभाष्य में पतञ्जलि ने यह वचन उद्धृत किया है : **एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति**। उन्हें मालूम था कि लोग शब्द की कीमत क्या करेंगे। इसीलिए उन्होंने कहा

कि एक शब्द का भी सम्यक् प्रयोग हो, तो वह स्वर्ग में कामधेनु सिद्ध होता है। शब्द सम्यक् न हो और उसमें गलत असोशियेशन (संगति) की गुंजाइश रही, तो क्या परिणाम होता है, यह गांधीजी के बाद हुए सत्याग्रहों में देखिये। उनके बाद हिन्दुस्तान में जो सत्याग्रह हुए, उनमें से एक प्रतिशत भी वास्तव में सत्याग्रह नहीं। उनमें कितनी सारी गलत बातें चलीं। सत्याग्रह में जो 'आग्रह' शब्द है, उसी के कारण ये परिणाम आये !

हाँ, तो मैं कह रहा था कि इस तरह गांधीजी ने कोई नये शब्द नहीं बनाये। पुराने शब्दों का ही प्रयोग किया। लेकिन सिद्धान्तों के जो व्यक्तिगत प्रयोग चल रहे थे, उनको सामूहिक रीति से करने की नयी बात उन्होंने बतायी ।

लेकिन इसे भी हम उनकी विशेषता नहीं कह सकते, क्योंकि यह तो विज्ञान की प्रक्रिया है। विज्ञान पहले प्रयोगशाला में प्रयुक्त किया जाता है और जब वह सिद्ध होता है, उसे समाज में लागू किया जाता है। यदि प्रयोग सिद्ध नहीं हुआ, तो समाज में नहीं लाया जाता। जिन्होंने पहले व्यक्तिगत प्रयोग किये थे, वे प्रयोगशाला के प्रयोग थे। आज विज्ञान के कारण उनको समाज में लागू करने के लिए गांधीजी को अनुकूलता प्राप्त हुई। इसलिए उन्होंने सामूहिक प्रयोग किये। अत: वह भी उनकी विशेष बात नहीं मानी जा सकती। वह तो विज्ञान के कारण हुआ।

फिर भी एक विशेषता उनके साथ जुड़ी है। उन्होंने कहा कि 'सत्य, अहिंसा आदि सब क्षेत्रों में लागू किये जा सकते हैं। अब तक माना जाता था कि **एवेरीथिंग इज फेअर इन पॉलिटिक्स** (राजनीति में सब कुछ मान्य है) और आगे का आप जानते ही हैं। यह भी कहा जायेगा कि **इन इलेक्शन्स आल्सो** (चुनावों में भी) । लेकिन गांधीजी को जहाँ लगा कि असत्य पैठ गया, वहाँ उन्होंने आन्दोलन वापस लिया! उनके साथियों ने नाराजगी प्रकट की कि इतना बड़ा आन्दोलन वापस लेना कहाँ तक उचित है। उन पर आक्षेप लगाये गये। फिर भी कहीं कुछ गलत काम चला, तो उन्होंने उनकी परवाह न कर आन्दोलन तक वापस ले लिया। यह जो साधन-शुद्धि की बात है, वही उनकी मुख्य देन है, न कि सामूहिक प्रयोग और न नवीन भाषा। उनकी नवीन भाषा भी

उत्तरोत्तर पुरानी पड़ेगी और पुनः नयी-नयी भाषा की जरूरत पैदा होगी। पचास साल बाद हमारी आज की भाषा भी पुरानी पड़ेगी और इससे भी नयी भाषा की जरूरत पड़ेगी। गांधीजी ने जो सामूहिक प्रयोग किये, वे परिस्थिति के कारण हुए और उनका भी सारा सामान प्राचीन लोगों ने तैयार रखा था। ईसा मसीह और मुहम्मद पैगम्बर ने भी कुछ सामूहिक प्रयोग किये थे, लेकिन गांधीजी को विज्ञान के कारण जितना मौका मिला, उतना उन लोगों को नहीं मिला। इसलिए गांधीजी की देन सामूहिक प्रयोग भी नहीं। यदि उनकी कोई देन है तो वह है साधन-शुद्धि।

'उत्तम साध्य के लिए उत्तम साधन चाहिए' यह उनका विशेष आग्रह रहा। आज के अणुयुग में इसे मान्य करना ही पड़ेगा। गांधीजी ने कहा था कि उत्तम साध्य के लिए गलत साधन इस्तेमाल किये जायें तो गलत साधनों का रंग उत्तम साध्य पर चढ़ेगा और साध्य भी कलुषित हो जायेगा। इसलिए साध्य और साधन को एक मानना चाहिए। यही साधन-साध्य-अद्वैत गांधीजी की विशेषता है। आचार्य शंकर के नाम पर 'जीव-ब्रह्म अद्वैत' चलता है, वैसे ही गांधीजी का मुख्य विचार 'साधन-साध्य-अद्वैत' है, ऐसा मुझे भास होता है। एक महापुरुष के सिद्धान्त के बारे में निर्णय देना साहस माना जायेगा। इसलिए मैंने कहा कि 'मुझे भास होता है।'

अब सवाल है, यह संदेश गाँव-गाँव और घर-घर कैसे पहुँचाया जाय ? इस पर दो तरह से सोचा जा सकता है: १. उसके स्थूल साधन क्या हों ? और २. सूक्ष्म साधन क्या हों ?

मैं मानता हूँ, भजन-संकीर्तन के अलावा दूसरे उत्तम स्थूल साधन नहीं हो सकते। इसीलिए मुझे 'सौरेन' की याद आयी। उसने बंगला में, पद्य में 'गांधी-चरितम्' लिखा है। हमें गाँव-गाँव जाकर कीर्तन करना चाहिए। यह ठीक है कि पुराने जमाने में संगीत का जितना आकर्षण था, उतना इस जमाने में नहीं है। फिर भी ग्रामीम जीवन में वह आज भी कम नहीं है। वैसे नागर जीवन में भी कम नहीं है, वह विकृत हो गया है। उसे कैसे सुधारा जाय, यह सवाल है। तो, भजन-कीर्तन द्वारा गांधीजी का संदेश देहातों में ले जा सकते हैं। सन्तों ने यही किया था। छोटे-छोटे भजन

बनाये और उनके द्वारा विचार पहुँचाया। साधन-साध्य-अद्वैत, साधन-शुचित्व का यह विचार लोगों के पास पहुँचानेवाले भक्तजन पैदा हों, तो निश्चय ही विचार गाँव-गाँव पहुँचेगा।

अब रही सूक्ष्म साधन की बात ! उसके लिए हमारे ग्रामीण जीवन में साधन-शुद्धि दाखिल हो, ऐसे काम करने होंगे। इसी तरह गांधी का यह सन्देश घर-घर पहुँच सकता है।

'मंत्री' : पवनार

सितम्बर, १९६८

: १६ :

दरिद्रनारायण और शौर्यशाली अहिंसा

भारतीय संस्कृति में जो ताकत थी, उसे प्रकट करने का मौका गांधीजी को मिला। उन्होंने स्वराज्य-प्राप्ति के काम को भी मानव-सेवा का रूप दिया। वह केवल एक राजनैतिक आन्दोलन नहीं रहा। उसमें ऐसे असंख्य पुरुषों ने भाग लिया, जो भूतदया-परायण थे। उनके दिमाग में कोई भेद नहीं था। गोलमेज-सम्मेलन में उन्होंने यह नहीं कहा कि ‘स्वराज्य हमें अपने अभिमान के लिए चाहिए। बल्कि यही कहा कि ‘हमें स्वराज्य चाहिए, क्योंकि हम उसके बिना दरिद्रनारायण की सेवा नहीं कर सकते।’ ‘दरिद्रनारायण’ शब्द से उन्होंने अच्छे आस्तिकों और अच्छे नास्तिकों का भेद मिटा, उन्हें एक प्लेटफार्म पर बिठा दिया। सेवा को भक्ति का रूप दिया। जो अपने सामने प्रत्यक्ष सेवा उपस्थित को छोड़कर हवाई बातें करना नहीं चाहते, वे ‘नास्तिक’ कहलाते हैं। ऐसे नास्तिकों में बहुत-से सज्जन हो गये हैं। सच्चे आस्तिक वे हैं, जो मानव-हृदय पर विश्वास रखते और मानते हैं कि मानव-हृदय में एक ज्योति है और उसी आधार पर हम सब प्रकार का अन्धकार मिटा सकते हैं।

एक तो जन-सेवा का विचार है, दूसरा है हृदय-परिवर्तन का विचार, भक्ति-मार्ग। वह कहता है, हम मनुष्य की सेवा करेंगे; पर जिस भूमिका में वे आज हैं, उसी में उन्हें रखकर नहीं। अपनी सेवा से उनके हृदय में परिवर्तन लायेंगे। वह हमारी सेवा का अङ्ग है। इसलिए हमें नारायण का स्पर्श करना होगा। यह नारायण-स्पर्श जिस सेवा को होगा, उसमें हृदय-परिवर्तन की ताकत आयेगी। दरिद्रनारायण शब्द से ये दोनों जुड़ते हैं।

x x x

हिन्दुस्तान में जैनों, बौद्धों और ब्राह्मणों में अहिंसा तो थी, पर उसमें शक्ति न थी। अहिंसा की शक्ति बनायी गांधीजी ने। उन्होंने अहिंसा को खाने-पीने के क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा,

मलहम-पट्टी लगाने या बीमार की सेवा करने तक ही मर्यादा नहीं माना। इसलिए उनकी अहिंसा में उसका शौर्य दाखिल हुआ। अहिंसा के लिए हाथ में तलवार लेने की जरूरत नहीं। तलवार लेना तो डर का लक्षण है। हम प्रेम तथा निर्भयता से आगे बढ़ें और मरने का मौका आये तो मरें, इस तरह की वृत्ति गांधीजी ने सिखायी। उन्होंने कहा कि ‘हिंसा का मुकाबला करने में मैं बिल्कुल नहीं घबराता।’ और वे अत्यंत निर्भय निष्कंप पुरुष थे। उन्होंने करुणा को निर्भयता के साथ जोड़ दिया।

जिस करुणा में निर्भयता नहीं, वह करुणा नहीं, देहासक्ति है। यह भाव हो कि ‘मैं सामनेवाले का दुःख नहीं देख सकता, क्योंकि अपना दुःख भी नहीं देख सकता’ तो वह करुणा कायर है। ‘मैं अपना दुःख देख सकता हूँ, पर सामनेवाले का दु:ख नहीं देख सकता’ यह भाव हो तो वह सच्ची करुणा है। ‘वृक्ष जैसे खड़े रहें, कोई काटे तब भी मुँह से शब्द न निकले’ ऐसी वृत्ति होने से ही करुणा निर्भयता के साथ जुड़ी रहेगी। गांधीजी की यह बराबर कोशिश रही कि सारी जनता ऐसी ही बने।

: १७ :

‘हे राम !’

उपनिषदों के कुल भाष्यों और वेदान्त में मरने के बाद अच्छे मनुष्यों और दुर्जनों को मिलनेवाली गति के बारे में कहा गया है। उसमें अच्छे लोगों की तीन गतियाँ बतायी गयी हैं। एक है: धूममार्ग या पितृयान-पन्थ। दूसरा है: देवयान-मार्ग और तीसरा है: इसी जीवन में ब्रह्म-प्राप्ति।

पहले दोनों मार्गों से भिन्न तीसरा मार्ग ब्रह्मनिष्ठा का मार्ग है। सवाल यह है कि क्या कोई ब्रह्मनिष्ठा ऐसा हो सकता है कि पूर्ण काम में लगा हो और फिर भी पूर्ण अनासक्त रहे ? क्या यह सम्भव है ? जो अरण्य में श्रद्धा, तप आदि करता है, उसमें भी कुछ आसक्ति रहती है। लेकिन जहाँ ब्रह्मनिष्ठा की बात आयी, तो वह उन दोनों से अलग ही खड़ा हो जाता है। पर समाज-सेवा करते हुए भी मनुष्य ब्रह्मविद्या का कैसे अधिकारी हो सकता और मुक्ति पा सकता है, इसकी कुछ मिसालें हमारे सामने हैं।

पुराना आदर्श : श्रीकृष्ण

भगवान् श्रीकृष्ण का आदर्श तो स्पष्ट ही है। किसी व्याध ने कृष्ण को हिरन समझकर बाण मारा और जब उसने देखा कि बाण शिकार को नहीं, भगवान् को लग गया है, तो वह बहुत डर गया। यह देखकर भगवान् शिकारी से कह रहे हैं कि ‘अरे, डर मत, तूने मेरी इच्छा पूरी कर दी। मुझे मरना ही था। तो रोग से मरता या योग से। रोग से मरना उचित नहीं, तो योग से मरने की तैयारी कर रहा था। लेकिन तूने मुझे सहज ही छुड़ा लिया। तू मेरा मुक्तिदाता है। इसलिए अब तुझे भी मुक्ति मिलेगी।’

इस प्रकार समाज की तरह-तरह की सेवा करते हुए भी पूर्ण जागृति का उदाहरण भगवान् श्रीकृष्ण ही प्रसिद्ध हैं। इस जमाने में वे गांधीजी में भी देखा गया।

आधुनिक आदर्श बापू की

बापू सबकी चिन्ता करते थे। छोटे-छोटे बच्चों को भी वे पत्र लिखते। लेकिन जब उन पर गोली चली तो उन्होंने अत्यन्त सहज भाव से भगवान् का नाम लिया। आखिर में उनके दोनों हाथ जुड़े हुए थे। उन्हें लगा कि कोई नमस्कार के लिए आया है, तो उन्होंने दोनों हाथ जोड़ दिये। तुलसीदासजी ने लिखा है:

जनम जनम मुनि जतन कराहीं ।
अंत राम कहि आवत नाहीं । ।

अन्तकाल में कोई-न-कोई चीज बीच में आड़े आ खड़ी होती है। लेकिन बापू और परमेश्वर के बीच कोई चीज खड़ी नहीं हुई। यह उदाहरण है कि समाज-सेवा करते हुए भी मनुष्य ब्रह्मविद्या का अधिकारी हो सकता है और मुक्ति पा सकता है।

मंजिल अभी दूर है

गांधीजी सत्यवादी तो थे, किन्तु उन्होंने दुनिया को ठगा यों कहकर कि ‘मैं अभी सत्य से बहुत दूर हूँ।’ सोचने की बात है, ऐसे कई लोग हैं जो मान बैठे कि वे मुक्त हो गये हैं, उनको अब कोई चीज प्राप्त करने को बाकी नहीं रह गयी, पूर्ण शान्ति और समाधान है। ऐसा कहनेवाले कई व्यक्ति मुझे भी मिले, लेकिन उनका कभी कोई आकर्षण नहीं हुआ। फिर भी इस सत्यवादी का आकर्षण हुआ जो हमेशा कहा करता था कि ‘मैं अभी सत्य से दूर, बहुत दूर हूँ।’ मनुष्य अपने प्रयत्न में हमेशा आगे बढ़ता जायेगा, फिर भी अपने ध्येय से दूर रहेगा। लेकिन एक क्षण ऐसा आता है, जब भगवान् एकदम उठा लेता है। जहाँ मनुष्य पहुँचा और जहाँ पहुँचना है, उसके बीच का अन्तर काटने का काम भगवान् करेगा, जब वह क्षण आयेगा। लेकिन जिनको भान होता है कि जो पाना है वह वे पा चुके, तो वह वास्तव में प्राप्त नहीं होता। उपनिषद् में आता है :

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् । ।

–जिसे भास हुआ कि मिल गया, उसको वह मिला ही नहीं। वह भास ही है। बापू को सतत भास होता था कि जाना है, और आगे जाना है, जहाँ जाना है, वह अभी दूर है। वे ऐसा कहते थे, लोगों को ठगते नहीं थे, परन्तु लोग इसमें ठग गये।

विकास और क्रान्ति में अन्तर

वह जो दूरी थी, अन्तर था, वह भगवान् ने आखिर में तोड़ डाला। यदि अन्दर से भगवद्भक्ति रहे, तो अन्तिम क्षण में वह अन्तर भगवान् के हाथों टूट जाता है। बापू का यह अन्तर भी उनके क्षण में एकदम टूट गया। इसी को क्रान्ति कहते हैं। विकासु करते-करते एक क्षण ऐसा आता है, जब क्रान्ति हो जाती है। जब क्रान्ति होती है तब बीच का अन्तर टूट जाता है। जब तक वह क्षण नहीं आया, तब तक भगवान् दूर-दूर रहेगा, अन्तर कायम रहेगा। प्रयत्न हमेशा जारी रखना होगा। उसके बिना प्रयत्नवाद और भक्ति खण्डित होगी। भास कायम रहेगा कि अभी अन्तर बाकी है। किन्तु परमात्मपुंज पूरा-का-पूरा जब प्रकट होगा, तब वह अन्तर एक क्षण में टूट जायेगा, अगर अन्दर से ‘लगनी’ (लगन) हो। यह ‘लगनी’ शब्द बापू का है। यही गूढ़विद्या है।

ब्रह्मविद्या-मन्दिर, पवनार

२७.१०.१९६४

* * * * *